# आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१८ * अंक-३ * नवम्बर-२०२३

# आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● देहसमूहरूपी वृक्षपंक्तिसे जो भयंकर है, जिसमें दुःख परम्परारूपी जंगली पशु (बसते) हैं, अति कराल कालरूपी अग्नि जहाँ सर्वका भक्षण करती है, जिसमें बुद्धिरूपी जल सूखता है और जो दर्शन मोहयुक्त जीवोंको अनेक कुनयरूपी मार्गोंके कारण अत्यन्त दुर्गम है उस संसार अटवीरूपी विकट स्थलमें जैनदर्शन एक ही शरण है।२०२४।

(श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार-टीका, श्लोक-३०६)

● निश्चयसे निजनिरंजन-शुद्धात्मसंवित्तिसे उत्पन्न निर्विकार परमानंद जिसका एक लक्षण है ऐसा सुखामृतके रसास्वादरूप स्वसंवेदनज्ञान यह इस ग्रंथका प्रयोजन है। परम निश्चयसे उस स्वसंवेदन ज्ञानके फलरूप, केवलज्ञानादि अनंतगुणके साथ अविनाभावी, निजात्म-उपादान सिद्ध अनंत सुखकी प्राप्ति वह इस ग्रंथका प्रयोजन है।२०२५।

(श्री नेमिचंद्र सिद्धांतदेव, बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा-१)

• हे भव्य! लोकमें नमन करनेयोग्य पुरुष भी जिनको नमस्कार करते हैं, ध्याने योग्य पुरुष भी जिसको निरन्तर ध्यान करते हैं तथा स्तुति करने योग्य पुरुष भी जिसकी स्तुति करते हैं—ऐसा परमात्मा इस देहमें ही विराजता है। उसको जैसे भी बने वैसे जान।१। (श्री कुन्दकुन्द आचार्य, मोक्षपाहुड, गाथा-१०३)

• जो परमात्मा है वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ वही परमात्मा है, इसलिये मैं ही मेरे द्वारा उपासने योग्य हूँ, अन्य कोई उपास्य नहीं है ऐसी वस्तुस्थिति है।२।

(श्री पूज्यपाद आचार्य, समाधितंत्र, श्लोक-३१)

• जो कोई मोक्षकी इच्छा रखकर परद्रव्यकी उपासना करता है—परद्रव्यका भक्त और सेवक बनकर उसके ही पीछे डोलता है—वह मूढ़-जन हिमवान पर्वत पर चढ़नेका इच्छुक होते हुए समुद्रकी तरफ चला जाता है— ऐसा मैं मानता हूँ।३।

(श्री अमितगति आचार्य, योगसार-प्राभृत, जीव अधिकार, गाथा-५०)

• जो परमात्मा ज्ञानस्वरूप है वह मैं ही हूँ और अविनाशी देव स्वरूप हूँ, जो मैं हूँ वही उत्कृष्ट परमात्मा है। इस प्रकार निःसंदेह तू भावना कर।४।

(श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधि-२, श्लोक-१७५)

• जो सिद्ध भगवान द्रव्यकर्म, भावकर्म और नो-कर्मसे रहित हैं केवल ज्ञानादि अनंत गुणोंसे पूर्ण हैं वही मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, नित्य हूँ, एक हूँ और निरावलम्बी हूँ।५।

(श्री देवसेन आचार्य, तत्त्वसार, गाथा-२७)

वर्ष-18
अंक-3

# आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2079
November
A.D. 2023

## मंगल सुप्रभातका मांगलिक

आज सुप्रभात है, कलशटीकामें सुप्रभात आता है । वहाँ तो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शनको सुप्रभात कहा है, लेकिन सम्यग्दर्शन हो, वह भी सुप्रभात-बीजरूप सुप्रभात है । अखंड आनंद स्वरूप प्रभु, उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है वह भी एक सुप्रभात है, यह दिन उदित हुआ उसे सुप्रभात कहते है । यहां तो ३८वीं गाथामें तो तब तक कहा है न !–कि पंचम आराके संत गुरु अप्रतिबुद्धको समझाते हैं, आहाहा ! अनादि अप्रतिबुद्ध अज्ञानीको गुरु बारम्बार समझाते हैं, उसका अर्थ बारम्बार वह विचार करता हैं । पंचमकालके श्रोताको गुरु समझाते हैं कि यह श्रोता ऐसा कहता है कि मैं एक शुद्ध चैतन्यघन हूं, दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे परिणमित हूँ और उस परिणमित हुई चीज मुझे पुनः फिर गिरना पड़े ऐसा मैं नहीं हूँ । आहाहा ! पंचमआराके श्रोताकी यह बात ! कम बात नहीं है । आगम युक्तिसे और अनुभवसे जो हमें आत्मज्ञान हुआ वह हमें फिर गिरनेवाला नहीं है । अहाहा ! पंचमआराके श्रोताकी यह दशा ! चाहे कोई कम श्रोता हो लेकिन श्रोताओकी ऐसी ही दशा होती है । आहाहा ! क्या शैली ! जीव अधिकार पूर्ण करते ३८वीं गाथामें, पंचमआरामें भी आत्माका शुद्ध चैतन्यस्वरूप जिन्होंने सुना, सुनकर जिन्होंने मनन किया, ध्यानमें जिन्हें प्राप्त हुआ वे श्रोता ऐसा कहते हैं कि हमारा यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान अप्रतिहत है । वह पुनः बदलनेवाला नहीं है । अरे

शुभ और अशुभ अनेकविध हैं उदित जो इस कालमें। परमागम
उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव है॥३८५॥ श्री समयसार

पंचमआराके श्रोता भगवानके पास गये नहीं है न! कहते हैं कि भगवान स्वयं ही है उसके पास गया है इसलिये उसे अंतरमें ऐसा अप्रतिहत दर्शन हुआ है। अहाहा! गजब बात है। उसका नाम जघन्यभावसे प्रारम्भका सुप्रभात कहा जाता है।

उत्कृष्ट भावरूप केवलज्ञान वह तो अभी नहीं फिर भी जो सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुआ है उन्हें अल्पकालमें केवलज्ञान प्राप्त होनेका है, उसमें कोई बदलाव है ही नहीं इसलिये तुझे जो सुप्रभात उद्योत होनेवाला है उसका अभीसे ही मांगलिक करते है कि हम सर्वज्ञदशाको प्राप्त करनेवाले हैं, हमें केवलज्ञान होनेवाला है। आहाहा! उसका नाम मंगल सुप्रभात है।

'मम्' नाम परका अहंकार, उसे 'गल' नाम जिन्होंने गाला है वह मांगलिक है। आहाहा! राग और पर्यायका अहम्पना ऐसा जो मिथ्यात्वभाव उसे शुद्ध चैतन्यघनमें अहम्पना मानकर, जिन्होंने गाला उसको यहाँ मांगलिक कहनेमें आया है।

वास्तवमें तो पंचपरमेष्ठी-अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुपना वह आत्माका ही स्वरूप है—ऐसा योगीन्द्रदेवमें आता है। आत्मामें ही अर्हंतपना, सिद्धपना, आचार्य, उपाध्याय और साधुपना—पंचपरमेष्ठीपना विद्यमान है। आत्मा स्वयं ही पंचपरमेष्ठी स्वरूप है। आहाहा! उसे (आत्माको ही) यहाँ मागलिकके रूपमें, उत्तम रूपमें, शरणरूप कहा गया है।

(—पूज्य गुरुदेवश्री, नूतन वर्षकी प्रातः सुप्रभातके अवसर पर)

---

प्रश्न :—विकल्प हमारा पीछा नहीं छोडते।

उत्तर :—विकल्पोंने तुझे पकडा ही नहीं, तुने विकल्पोंको पकडा है। तू परमानंद स्वरूपसे परिपूर्ण भगवान है। —उसे दृष्टिमें नहीं लेता, जिससे विकल्प तुझे पकडे हुए लगते हैं। तूने, तेरे भगवानको भ्रमसे भूलकर विकल्पोंको पकडा है। तूँ खिसक जा न। तूँ विकल्पोंका लक्ष्य छोडकर अपने भगवानका लक्ष्य कर—तो विकल्प तुझे पकडे हुए नहीं लगेंगे। विकल्पोंमें कही भी सुख-शांति नहीं है, जहाँ सुख-शांति भरी है वहाँ जा। सुख-शांतिका भंडार—ऐसे भगवानको पकड (आलिंगन कर)। तेरे अन्तरमें पूर्ण सुख-शान्ति भरी है। विकल्प तो बाहर हैं, उनमें कही भी सुख-शान्ति नहीं। तेरे अन्तरमें विकल्परहित वस्तु है, उसमें सुख-शांति भरी है, प्रथम उसीका लक्ष्य और प्रतीति कर, विकल्पसे भेदज्ञान कर। स्थिरता अनुसार क्रमशः सभी विकल्प छूट जायेंगे। —पूज्य गुरुदेवश्री

---

पचखाण नित्य करे अरु प्रतिक्रमण जो नित्य हि करे।
नित्य हि करे आलोचना, वह आतमा चारित्र है॥३८६॥

# श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

## बंध-मोक्षको साधक करता नहीं, मात्र जानता है

दया-दान आदिके शुभरागको करे और वेदन करे वह तो मिथ्यादृष्टि है। जिसको स्वभावका ज्ञान हुआ नहीं वह रागको करता और वेदता है लेकिन अंदरमें जाना कि भगवान आत्मा तो रागसे भिन्न पूर्णानंद स्वरूप है–ऐसा जिसे विश्वास आया है, ज्ञानके व्यक्त अंशमें-परिणमनमें ऐसा जिसने जाना है वह रागको और बंधको जानता है लेकिन वह रागको करता या वेदता नहीं है। शुद्धज्ञानपरिणत साधक जीव बंधको जानता है, राग आये, राग हो लेकिन उसकी ज्ञानदशामें वह जाननेमें आता है। धर्मी बंधको भी जाने और मोक्षको भी जाने, रागका अभाव हो उसे भी जाने रागके अभावको करता नहीं है। धर्मी जीव मोक्षको करे ऐसा भी नहीं, मोक्षको जानता है।

भगवान आत्मा पवित्ररूप है और उसका ऐसा पवित्रपना जिसके अंशमें भी पर्यायमें प्रगट हुआ वह जीव राग आये तो उसे जाने लेकिन उसे करता भी नहीं और वेदता भी नहीं। बंधको जानता है और मोक्षको जानता है, करता नहीं। शक्ति अपेक्षासे ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा भान होकर जिनकी दशामें ज्ञान और आनंदकी दशा व्यक्त हुई है ऐसा धर्मी जीव मात्र बंधको और मोक्षको जानता है इतना ही नहीं लेकिन शुभ और अशुभभाव कि जो धर्मके निमित्तसे होते है उसे भी जानता है किन्तु उसका कर्ता-वेदक नहीं है। साधकको अभी भी बाधकभाव है उसे वह जानता है, राग होता है उसे जानता है और रागका नाश होता है उसे भी जानता है। ज्ञानस्वरूप भगवान है वह ज्ञानके अतिरिक्त अन्य क्या करे?–मात्र जानता है।

## मात्र बंध-मोक्षको नहीं, कर्मोदय एवं निर्जराको भी ज्ञानी जानते है

भगवान तो ज्ञानचक्षु है, चैतन्यमूर्ति है, वे तो चक्षुकी भांति परसे भिन्न रहकर दूरसे परको जानते है। धर्मी अकेला बंध-मोक्षको जानता है ऐसा नहीं लेकिन कर्मके उदयको भी जानता है। धर्मीको अभी शुभ और अशुभ राग होता है, उसे वे जानते है और राग टल जाता है उसे

जो कर्मफलको वेदता जीव कर्मफल निजरूप करे।
वह पुनः बांधे अष्टविधके कर्मको—दुःखबीजको॥३८७॥

भी धमी जानते है, उसे टालते नहीं क्योंकि ज्ञानचक्षु जाननेके अतिरिक्त अन्य क्या करे ?

प्रश्न :–ज्ञान ज्ञानको तो करता है न ?

समाधान :–अकेला ज्ञानको नहीं पकड़ता, संपूर्ण आत्माका अनुभव करते है; ज्ञान-प्रधान कथन है लेकिन ज्ञानके साथ सभी शक्तिके निर्मल परिणामसे वह परिणमित होता है।

स्वरूपका अनुभव हुआ, प्रज्ञाब्रह्मका ज्ञान और अनुभव हुआ है लेकिन राग विद्यमान है ऐसा साधकजीव क्या करता है ?–कि उसे राग आता है उसे जानता है, मोक्ष होता है उसे जानता है। चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि जीव बंधको जानता है। साधक जीवको राग होता है उसे वे जानते है, वैसे मोक्षको जानते है तथा कर्म छूटते है उसे भी जानते है, कर्मको छोड़ता नहीं, इतना तो ठीक लेकिन शुभ-अशुभ भाव हो उसे भी जानते है। चतुर्थ गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टिको रौद्रध्यान आता है उसे जानते है। इतना ही नहीं सविपाक-अविपाकरूप और सकाम-अकाम निर्जराको भी जानता है।

सविपाक-अविपाक तथा सकाम-अकाम निर्जराको जाने अर्थात् क्या ?–कि स्थिति पूर्ण होने पर कर्मके रजकण उदयमें आकर खिर जाय वह सविपाक निर्जरा है, उसका कर्ता ज्ञानी नहीं है। और पुरुषार्थकी उग्रतासे कर्म उदयमें आये बिना खिर जाये वह अविपाक निर्जरा है उसका भी कर्ता ज्ञानी नहीं। जीवके पुरुषार्थ तप आदिसे जो निर्जरा होती है वह सकाम-निर्जरा है और इच्छा न होने पर भी क्षुधा-तृषा आदि समताभावसे सहन करना वह अकाम निर्जरा है। सकाम-अकाम निर्जराका भी कर्ता ज्ञानी नहीं, ज्ञानी तो उसको मात्र जानता है।

### बंध-मोक्षके कारण और परिणामसे शून्य परम-पारिणामिकभाव

सर्व विशुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्ध-उपादानभूत शुद्ध-द्रव्यार्थिकनयसे जीव कर्तृत्व-भोक्तृत्वसे तथा बंध-मोक्षके कारण और परिणामसे शून्य है ऐसा समुदायपातनिकामें कहा गया है। पुनः चार गाथा द्वारा जीवका अकर्तृत्वगुणके व्याख्यानकी मुखतासे सामान्य विवरण किया गया, तत्पश्चात् चार गाथा द्वारा 'शुद्धको भी जो प्रकृतिके साथ बंध होता है और अज्ञानका माहात्म्य है' इसप्रकार अज्ञानका सामर्थ्य कहनेरूप विशेष वर्णन किया गया है। (-गुजराती टीका)

अब स्वयंका स्थायी स्वरूप और सम्यग्दर्शनका विषय–सम्यग्दर्शनका ध्येय ऐसा आत्मा कैसा है ?–कि वह तो सर्वविशुद्ध वस्तु है, पारिणामिक अर्थात् कि सहजभाव,

जो कर्मफलको वेदता जाने 'करमफल मैं किया'।
वह पुनः बांधे अष्टविधके कर्मको—दुःखबीजको ॥३८८॥

परमभाव वस्तु है। भगवान सर्वविशुद्ध पारिणामिकभाव है पारिणामिक वह परमभाव है, उसे जाननेवाली शुद्ध उपादानभूत शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे त्रिकाली परम स्वभावभाव कर्तृत्व-भोक्तृत्वसे रहित है। सर्वविशुद्ध पारिणामिक ऐसे परमभावको जाननेवाली शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे भगवान आत्मा व्यवहारका कर्ता और व्यवहारका भोक्ता नहीं है। व्यवहार अर्थात् शुभरागका शुद्ध-उपादानसे कर्ता-भोक्ता तो नहीं लेकिन बंध-मोक्षके कारणसे और पर्यायसे भी भगवान आत्मा शून्य है।

भगवान त्रिकाली चैतन्यदल आनंदकंद प्रभु बंध और बंधके कारणसे भिन्न है। सम्यग्दृष्टि भी बंध और बंधके कारणसे शून्य है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिका विषय बंध और बंधके कारणसे रहित त्रिकाली चैतन्यघन है। त्रिकाली द्रव्य जिसका प्रयोजन है ऐसी द्रव्यार्थिकनयसे देखते भगवान आत्मा बंधसे और बंधके कारणसे रहित है और मोक्ष व मोक्षके कारणसे शून्य है। त्रिकाली आत्मा उस दशाको–बंध और बंधके कारणकी दशाको करता नहीं, क्योंकि त्रिकाली भगवान उस परिणामसे शून्य है। अरे ! मोक्ष और मोक्षके कारणसे भी ध्रुव भगवान शून्य है, क्योंकि वह पर्याय है। निश्चयरत्नत्रयके परिणामरूप मोक्षमार्ग और केवलज्ञान और सिद्धदशारूप मोक्षके परिणामका कर्ता ध्रुव नहीं है। बंध-मोक्षके कारण और बंध-मोक्षके परिणाम वह पर्याय है, वह गुण नहीं, अरिहंतदेवको केवलज्ञान होता है वह परिणाम है, पर्याय है इसलिये उसका कर्ता त्रिकाली द्रव्य नहीं है। त्रिकाली द्रव्य मिथ्यात्व, अव्रत आदिको करता नहीं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके परिणामको द्रव्य करता नहीं और बंध होता है उसे द्रव्य करता नहीं और केवलज्ञानके परिणामको भी करता नहीं, क्योंकि ध्रुववस्तु बंध और मोक्षके कारण और परिणामसे शून्य है।

## सम्यग्दर्शनका विषय उत्पाद-व्ययको करता नहीं

भगवान आत्मा कि जिसे आत्मा कहते है वह ध्रुव आत्मा मोक्षके परिणामको करे नहीं। सम्यग्दृष्टिके ध्येयमें जो ध्रुव वस्तु है कि जिसमें उत्पाद-व्ययका अभाव है वह उत्पाद-व्ययकी पर्यायको करता नहीं। सम्यग्दर्शनका विषय जो ध्रुव है वह मोक्षको और मोक्षमार्गको करता नहीं। त्रिकाली ध्रुव वस्तु मोक्षको भी करे नहीं और उसके कारणरूप मोक्षमार्गको भी करे नहीं, मिथ्यात्व आदि भावबंधको करे नहीं और बंधके कारणरूप विकारी परिणामको

(शेष देखे पृष्ठ १० पर)

जो कर्मफलको वेदता जीव सुखी दुःखी होय है।
वह पुनः बाँधे अष्टविधके कर्मको—दुःखबीजको॥३८९॥

# वैराग्य भावना

(श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

अब कहते हैं कि जो कहे हुए तत्त्वको सुनकर निश्चलभावोंसे भाता है, वह तत्त्वको जानता है—

**तच्चं कहिज्जमाणं, णिच्चलभावेण गिण्हदे जो हि।**
**तं चिय भावेदि सया, सो वि य तच्चं वियाणेइ॥२८०॥**

अर्थ :–जो पुरुष, गुरुओंके द्वारा कहे हुए तत्त्वोंके स्वरूपको निश्चलभावसे ग्रहण करता है, अन्य भावनाओंको छोड़कर उसीकी निरन्तर भावना करता है, वही पुरुष, तत्त्वको जानता है।

जैनदर्शन ऐसा अपूर्व और दुर्गम्य है कि यथार्थ गुरुगमसे सुने बिना, उसका रहस्य समझमें नहीं आ सकता अर्थात् गुरुगमके बिना अकेले शास्त्रोंसे सत्य नहीं समझा जा सकता। जहाँ जीवकी सत्य समझनेकी पात्रता होती है, वहाँ निमित्तरूपसे गुरुगम होता ही है। अकेले शास्त्रसे अपनी कल्पनासे समझमें आ जाए—ऐसा जैनदर्शन नहीं है। शास्त्र कहीं अपने भाव नहीं कहते; शास्त्रोंका भाव तो ज्ञानीके हृदयमें है।

भाई ! वीतरागी संतोंकी परम्परामें शास्त्रोंका अर्थ चला आ रहा है। शास्त्रका अर्थ करनेवाले संतोंकी परम्परा जैनशासनमें अटूट है। यदि अर्थ करनेवाला पुरुष न हो तो अकेली वाणी अप्रमाण है। पुरुषके बिना वाणीका अर्थ कौन करेगा ? इसलिये अकेली वाणी हमें मान्य नहीं है परन्तु वाणीका अर्थ करनेवाले ज्ञानी पुरुष परम्परासे होते आये हैं। उस-उस कालके शास्त्रोंके ज्ञानसे सम्पन्न ज्ञानी पुरुष, शास्त्रोंका अर्थ करते हैं, वहीं मान्य है; इसलिये यहाँ भी यह कहा है कि गुरुजनों द्वारा कहा गया तत्त्वका स्वरूप सुनकर जो जीव निश्चलभावसे उसे ग्रहण करता है और अन्य भावना छोड़कर अंदरमें बारम्बार उसकी भावना करता है, वह पुरुष तत्त्वको जानता है। जिसने गुरुगमसे यथार्थ श्रवण भी न किया हो, उसे तो समझनेकी पात्रता भी नहीं है; इसलिये गुरुगमसे सुनकर अंतरंगमें उसका निर्णय करके बारम्बार तत्त्वज्ञानकी भावना करनी चाहिये

**रे! शास्त्र है नहिं ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं।**
**इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु शास्त्र अन्य—प्रभू कहे॥३९०॥**

अब कहते हैं कि जो तत्त्वकी भावना नहीं करता है, वह स्त्री आदिके वशमें कौन नहीं है ? अर्थात् सब लोक है—

**को ण वसो इत्थि-जणे, कस्स ण मययेण खंडियं माणं।**
**को इन्दिएहिं ण जिओ, को ण कसाएहिं संतत्तो॥२८१॥**

अर्थ :–इस लोकमें स्त्रीजनके वश कौन नहीं है ? कामसे जिसका मन खंडित न हुआ हो—ऐसा कौन है ? जो इन्द्रिओंसे न जीता गया है–ऐसा कौन है ? और कषायोंसे तप्तायमान न हो–ऐसा कौन है ?

भावार्थ : विषय-कषायोंके वशमें सब लोक हैं और तत्त्वोंकी भावना करनेवाले विरले ही हैं।

देखो, जिसकी भावना अंतरंगमें चैतन्यतत्त्वकी ओर नहीं है, वह बाह्यमें स्त्री आदिके वश हो जाता है जिसे ज्ञायक चैतन्यकी भावना नहीं है, उसे विषयोंकी भावना है। जिसे असंयोगी चैतन्यतत्त्वकी दृष्टि और भावना नहीं है, वह जीव संयोगके आधीन हुए बिना नहीं रहता है। धर्मी जीवको अंतरंगमें चैतन्यस्वभावका भान है, उसे वास्तवमें परकी भावना नहीं होती। चैतन्यकी दृष्टि करके, उसकी भावना करना ही विषयोंको जितनेका उपाय है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा चक्रवर्ती हो और छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, तथापि उसकी दृष्टि चैतन्यके वश है; वस्तुतः वह विषयोंके वश नहीं होता।

जिसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरुके प्रति उल्लास होता है, उसे कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रका प्रेम नहीं होता तथा देव-शास्त्र-गुरुके प्रति उल्लास और प्रेमकी अपेक्षा यदि स्त्री इत्यादिके प्रति प्रेम और उल्लास बढ़ जाए तो वह जीव मिथ्यादृष्टि है और चैतन्यस्वभावके उल्लासकी तुलनामें खंड खंड रागभावका उल्लास बढ़ जाए तो वह भी मिथ्यादृष्टि है। जिसकी परिणति अंतरंगमें स्वसन्मुख नहीं हुई है, उसकी परिणति परविषयोंके सन्मुख हुए बिना नहीं रहती अर्थात् वह जीव, विषय-कषायों द्वारा जीता गया है।

धर्मीको अस्थिरताका राग होता है परंतु धर्मके प्रति प्रेमकी अपेक्षा संसारके प्रति प्रेम-उत्साह बढ़ जाए—ऐसा कभी नहीं होता। चारित्रकी कमजोरीके कारण राग आता है, उसकी धर्मीको जरा भी रुचि अथवा भावना नहीं है। धर्मी, गृहस्थदशामें भी काम के वश नहीं है।

**रे! शब्द है नहिं ज्ञान, क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।**
**इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु शब्द अन्य—प्रभू कहे॥३९१॥**

जो जीव, ज्ञायक, अतीन्द्रिय, असंयोगीस्वभावके वश नहीं है, वह पाँच इन्द्रियोंके विषयोंके वश होता ही है। विषय समीप होने पर भी ज्ञानी उन्हें जहर मानता है। ज्ञानीको अखंड ज्ञानानंदस्वभावकी रुचि मुख्य है; इसलिये वह जितेन्द्रिय है।

देखो, यहाँ अकेले विषयोंको ही छोड़नेकी बात नहीं है। किन्तु जिसे अखंड स्वविषय, स्व चैतन्यका ध्येय नहीं है, उसे खंड-खंड इन्द्रिय-विषयोंकी रुचि-ध्येय-भावना हुए बिना नहीं रहती क्योंकि पर्यायबुद्धिका प्रवाह मिटा नहीं है। जिसे स्त्रीके मनोहर वचन मधुर लगते हैं और उसके वश हो जाता है वह मूढ़ अज्ञानी है। ज्ञानी तो स्वको चूककर रागमें नहीं जुड़ता है और कोई निमित्तसे, सुन्दर रूपसे, अथवा शब्दसे राग होना भी ज्ञानी नहीं मानता है। ज्ञानीको अस्थिरताका राग, गौण है; ध्रुव-चिदानंदस्वभाव ही मुख्य है, इसलिये वह कभी विषयोंके वश नहीं होता। नित्य अकषाय शांत ज्ञायकस्वभावकी अतीन्द्रिय रुचि नहीं हुई है, वह कषायोंसे तप्तायमान है। देखो, आचार्यदेवने अतीन्द्रिय ज्ञायकस्वभावकी कैसी महिमा की है। (क्रमशः) ✻

---

(पृष्ठ ७ का शेष भाग) (समयसार प्रवचन)

भी करे नहीं, क्योंकि पलटती दशाको–उत्पाद-व्ययको ध्रुव करता नहीं।

प्रभु तो चैतन्यघन है जिसमें मोक्ष और मोक्षमार्गको करना नहीं है, बंध और बंधके कारणका करना नहीं। बंध-मोक्षके कारण और बंध-मोक्षके परिणामसे सम्यग्दर्शनका विषय ध्रुव भगवान शून्य है। सम्यग्दर्शनके परिणामसे भी त्रिकाली ध्रुव शून्य है। उत्पाद-व्यय तो परिणाम है, उसे द्रव्य स्पर्शता ही नहीं तो करे किस प्रकारसे ? बंधके परिणामको और बंधके कारणको कैसे करे ?–शुद्ध शक्ति है वह अशुद्धताको किस प्रकार करे ? अरे ! शुद्ध शक्ति है वह शुद्धताको भी करती नहीं। पर्याय द्रव्यको स्पर्शती नहीं और द्रव्य पर्यायको स्पर्शता नहीं। मोक्षमार्गकी पर्यायको भी द्रव्य स्पर्शता नहीं। अव्यक्त (द्रव्य) व्यक्त (पर्यायको) स्पर्शता नहीं ऐसे श्री समयसारकी ४९वीं गाथामें अव्यक्तके बोलमें कहा है तथा श्री प्रवचनसारकी १७२वीं गाथामें अलिंगग्रहणके बोलमें ऐसा कहा कि द्रव्य पर्यायको स्पर्शता नहीं और पर्याय ध्रुवको स्पर्शती नहीं क्योंकि द्रव्य और पर्याय दो सत् है वह एक सत् अन्य सत्को किस प्रकार करे–स्पर्श करे ? समझमें आये इतना समझना और समझके रुचि करना, संस्कार डालना वह सर्वप्रथम करनेका है। (क्रमशः) ✻

रे! रूप है नहिं ज्ञान, क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु रूप अन्य—प्रभू कहे॥३९२॥

# श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

**प्रवचन नं.-३० (गाथा-२६)**

## बंध-मोक्षका स्वरूप

श्री पूज्यपादस्वामीकृत इष्टोपदेशकी यह २६वीं गाथा चलती है।

रागी जीव कर्मोंसे बाध्य है। रागी अर्थात् जो स्वयंके शुद्ध आनंदकंद स्वरूपके साथ विकल्पका सम्बन्ध करते है उस जीवको कर्मोंसे बंध होता है और अरागी अर्थात् स्वयंके स्वरूपके साथ संबंध जोड़कर विकल्पका सम्बन्ध छोड़नेवाला जीव कर्मोंसे मुक्त होता है।

बहुत संक्षिप्तमें संपूर्ण बंध-मोक्षका कारण समझा दिया है।

आत्मा सच्चिदानंद ज्ञानानंद शुद्ध परमानंद मूर्ति है वह एक सूक्ष्म विकल्पके साथ सम्बन्ध करे, संगको प्राप्त हो तो भी बंधको प्राप्त करता है। किसी भी प्रकारका परद्रव्य या परभावके साथ सम्बन्ध जोड़नेसे जीव बंधको पाता है और चैतन्य ज्ञानानंद ज्योतमें विकल्प आदिके साथ सम्बन्ध नहीं बांधने पर स्वयंकी दशासे असंग तत्त्वको प्राप्त करनेसे वह बंधनसे मुक्त होता है। बस ! यह ही बंध-मोक्ष सम्बन्धी जिनेन्द्रदेवका उपदेश है ऐसा श्री पूज्यपादस्वामी फरमाते है।

अब कहते है कि जब, बंध-मोक्षकी यह ही स्थिति है तो व्रतादिमें चित्त लगाकर मन-वचन-कायाकी सावधानीपूर्वक निर्ममताका प्रयत्न रखना, निर्ममभाव जागृत करना।

प्रश्न :–निर्ममताका प्रयत्न किस प्रकार करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–स्वभावकी ओर प्रयत्न करना। चैतन्यघन आनंदकंद ज्ञानमूर्ति स्वभावमें एकाग्र होनेका प्रयत्न करना। तो निर्ममभाव जागृत होगा। यहाँ मन-वचन-कायासे खिसककर अंदर स्वरूपमें सावधानीरूप निश्चय उपायके साथ व्रतादिके विकल्परूप शुभव्यवहार-उपायकी बात साथमें ली है।

आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति, अनंत आनंदका कंद स्वयं ही परमात्मा है। आत्मा एक वस्तु है–पदार्थ है, तो उस पदार्थका नित्य स्वभाव तो होगा न ! त्रिकाल आत्मवस्तुमें त्रिकाल ज्ञान, दर्शन, स्वच्छता, आनंद, शांति आदि अनंतगुण स्वभाव जड़ित अविनाभाव

रे! वर्ण है नहिं ज्ञान, क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु वर्ण अन्य—प्रभू कहे॥३९३॥

स्वभावसे है। जड़ित है अर्थात् किल लगाकर किलीत किया ऐसा नहीं किन्तु गुड़में जैसे मीठापना है ऐसे आत्मामें ज्ञानादि शक्तियाँ किलीत है। ऐसा आत्माका वास्तविक स्वरूप है। उसमें रागादि विकल्पका त्रिकाल अभाव होने पर भी विकल्प उपस्थित करके उसमें संग करे, एकत्वपना करे, सम्बन्ध करे तो वह बंधको प्राप्त होता है, इस प्रकार संसारमें परिभ्रमणके कारण ऐसे बंधको जीव स्वयं ही उपस्थित करता है।

जो कोई अंतरकी सावधानीपूर्वक निज शुद्ध स्वभावमें सम्बन्ध लगावे, एकत्व करे और रागसे सम्बन्ध तोड़े वह जीव मुक्तिको प्राप्त करता है। बंधके अभावपूर्वक आत्माकी निर्विकल्प शांतिकी पूर्णतारूप मुक्तिको प्राप्त करता है।

परमार्थसे शरीर, कर्म, शुभाशुभरागादि विकल्पसे मैं पृथक् हूँ और मेरे शुद्ध ज्ञानानंद ज्योतस्वरूपसे वे पृथक् है। उस स्वरूपसे मैं पृथक् हूँ और मेरे स्वरूपसे वे पृथक् है ऐसा अंतरमें भेद करना अभ्यास करना वह मोक्षार्थी जीवका कर्तव्य है। परस्वरूपसे स्वयंको पृथक् करनेका अभ्यास करना वह आत्माके अतीन्द्रिय आनंदकी पूर्णतारूप मुक्तिकी प्राप्ति हेतुकी क्रिया है। शरीरादिकी विविध अवस्थामें रागादि विकल्पमें मेरा कुछ नहीं है और मेरे स्वरूपमें उसका कोई नहीं है। उसमें मैं नहीं और मेरेमें वह नहीं।

देखो, यहाँ शरीर और विकल्पसे पृथक् करनेका अभ्यास कराते है वहाँ स्त्री, कुटुम्ब, आदिकी बात तो बहुत दूर रही वे तो तेरेमें कहाँसे हो?

प्रश्न :–विकल्प तो आते ही रहते है तो उसका क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री :–विकल्प कहां तेरे स्वरूपमें है जो आया ही करे? मुफ्तमें तू उसे उपस्थित करता है। तू तो अनादि अनंत शाश्वत ज्ञानमूर्ति है। उसमें विकल्पका तो त्रिकाल अभाव है। फिर भी जमीनमेंसे भाला खड़े करे ऐसे विकल्प स्वयं उपस्थित करता है और कहता है कि ऐसे ही विकल्प आ जाते है। शरीर, विकल्प आदि मेरे नहीं, मैं उसका नहीं, वे मेरे कोई नहीं है और मैं उसका कोई नहीं। बस, यह भेदज्ञानज्योति ही केवलज्ञानका कारण है। लेकिन लोगोंको इस यथार्थ लाभके बातकी कोई जानकारी नहीं और अंधी दौड लगाकर विपरीत मार्ग, गेरलाभके रस्ते पर दौड़ता रहता है।

भगवान आत्मा सत्...चित्...सत्... चित्...सत्...चित् नाम शाश्वत चित्त नाम

रे! गंध है नहिं ज्ञान, क्योंकि गंध कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु गंध अन्य—प्रभू कहे॥३९४॥

ज्ञानानंदका पूर्ण समूह है–सत्त्व है। उसमें रागादि नहीं और रागादिमें वह नहीं। ऐसे अंदरमें रागसे भेदज्ञान करना वह ही राग और ज्ञानके बीच करवत रखनेकी कला है।

जैसे जीव एक अस्तित्ववाला द्रव्य है वैसे शरीर भी अस्तित्ववाला जडद्रव्य है। अनंता पुद्गल परमाणुका एक स्कंध है। उसकी वर्तमान योग्यता अनुसार वह परिणमित होता है उसमें जीव कुछ बदलाव कर सकता नहीं है। यहाँ श्री पूज्यपादस्वामी फरमाते हैं कि जिन्हें अतीन्द्रिय आनंदकी पूर्णतारूप मोक्षकी प्राप्तिकी अभिलाषा है उसे भेदज्ञानकी भावना करना। राग और वीतराग यह दो स्वभाव बीच वितरण करना।

अब श्री गुणभद्रस्वामीकृत आत्मानुशासनका आधार देते है कि जब तक मुक्ति न हो तब तक मोक्षार्थीको परद्रव्यसे हटनेकी भावना करना अर्थात् स्वभावमें एकाग्रता करना जिससे परद्रव्यका लक्ष सहजमें छूट जायेगा। संवर अधिकारमें भी इस बातकी पुष्टि दे ऐसा एक श्लोक है।

जिन्हें मोक्षकी अभिलाषा नहीं वह तो अनादिसे परद्रव्यमें एकता मानता है लेकिन जिन्हें पूर्णानंद स्वरूप मोक्षकी प्रार्थना है उन्हें परद्रव्यका सम्बन्ध तोड़कर स्वरूपके साथ सम्बन्ध जोड़नेका प्रयत्न करना। आत्मा वस्तु तो अविनाशी शुद्ध ही है। लेकिन अज्ञानी जीव राग-पुण्य-पाप आदिका सम्बन्ध उपस्थित करके उसमें स्वयंकी दृष्टिका स्थापन किया है इसलिये उसका संग छूटता नहीं और असंग होता नहीं है। यह असंग होनेका उपाय एकमात्र स्वरूप एकाग्रता ही है।

मोक्ष कह्यो निज शुद्धता जो पामे वह पंथ
समझाया संक्षेपमें, सकल मार्ग निर्ग्रंथ।

मोही जीव कर्म बांधता है और निर्मम जीव मुक्त होता है इसलिये सर्व प्रयत्नसे हे भव्य ! आप निर्ममभाव जागृत किजीये। शुभाशुभ, काम-क्रोधादि भावोंमें ''यह मैं हूँ और यह मेरे है'' ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है वह जीवको संसारमें परिभ्रमण करानेवाला है और मैं तो एक ज्ञानानंद शुद्ध चैतन्यघन आनंदकंद हूँ। एक विकल्प भी मेरा नहीं ऐसा निर्ममभाव संसारपरिभ्रमणसे छुड़ाकर जीवको मुक्तिमें ले जाता है। इसलिये जिन्हें एकमात्र मोक्षकी प्रार्थना है उन्हें सर्व प्रयत्नसे रागके सम्बन्धमें रहना छोड़कर स्वभावके साथ सम्बन्ध जोड़ना।

रे! रस नहीं है ज्ञान, क्योंकि रस जु कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य रस—जिनवर कहे॥३९५॥

उग्र प्रयत्नसे अंतर्मुख दृष्टि करके निर्ममभाव जगाना।

अरे ! प्रभुका पंथ कोई अलौकिक है। प्रभु कहते हैं कि, तू स्वयं परमेश्वर हो– परम शक्तिका सत्त्व तू स्वयं ही है, इसलिये पामरताके विकल्पोंसे सम्बन्ध छोड दे ! और परमेश्वरके निजपदके साथ सम्बन्ध जोड़ दे। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकीनाथका यह संदेश है। अरे आत्मा ! तेरे ध्रुव स्वभावके साथ सम्बन्ध जोड़ और रागके साथका सम्बन्ध तोड़ दे ! किन्तु यह कार्य प्रयत्न बिना नहीं होगा ! बहुत जागृतिका अथाग प्रयत्न चाहिये।

भगवान ! तेरेमें कहाँ कमी है कि तुझे शरीर, धन, कुटुम्ब आदि परद्रव्यकी आवश्यकता हो ? तू कहाँ अपूर्ण है कि तुझे परकी आशा रखनी पड़े ? आनंदघनजीमें आता है कि ''आशा औरनकी क्या कीजे ? ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरनकी मत कीजे'' चैतन्यमूर्ति आनंदका रस है, अंतर प्रयत्न द्वारा वह आनंदरसका पान कर ! बाह्यमें कहाँ रस है ?

अनादिसे जीवने जैसे कुत्ता घर घर रोटीकी आशा रखे वैसे सभीसे मुझे कोई बड़ा कहे, धनवान कहे, बुद्धिवान कहे, मान देकर बुलाये ऐसी आशा रखी है किन्तु अनादिकालमें कभी स्वयंके निधान पर दृष्टि नहीं की। दृष्टि करे तो ऐसा उत्साह आये कि जो कभी उतरे नहीं।

गुरुने सर्व प्रयत्नसे शिष्यको निर्मम होनेका बोध दिया तब शिष्य गरजवान होकर निर्मम होनेके लिये कौनसा उपाय करना ऐसा प्रश्न करता है। जिसका उत्तर श्री पूज्यपादस्वामी चार गाथामें कहेंगे।

अरे ! घरमें अनाज भरा हो और दूसरेके यहाँ जूठन खाने जाय तो दुनिया उसे पागल कहे। पींगलाका दृष्टान्त आता है न कि घरमें भर्तृहरि जैसा बड़ा राजा और रानी एक तुच्छ अश्वपालके साथ सम्बन्ध बांधती है। बादमें मालूम पड़ने पर भर्तृहरिको वैराग्य आता है। ''देखा नहि कुछ सार जगतमें, देखा नहि कुछ सार'' ऐसा कहकर दीक्षा ले लेते है। उसका नाटक पहले भी आता था। बचपनमें यह नाटक देखने पर हमारे रोम रोम खड़े हो जाते थे कि ऐसी वैरागीदशा कब आनी चाहिये !

यहाँ मुनिराज कहते हैं कि आत्मा चैतन्यनिधानसे भरा है उसे छोड़कर विकल्पके साथ सम्बन्ध जोड़ना वह व्यभिचार है। वह तुझे शोभता नहीं है भाई ! घरका अन्न छोड़कर दूसरेके अन्नमें दृष्टि मत डाल ! (क्रमशः) ✻

रे! स्पर्श है नहिं ज्ञान, क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु स्पर्श अन्य—प्रभू कहे॥३९६॥

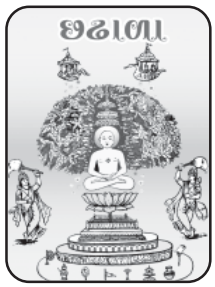


# श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा - ७)

## निर्जरा और मोक्षतत्त्वमें अज्ञानीकी भूल तथा मिथ्याज्ञानका स्वरूप

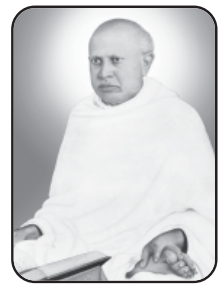

**रोके न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।**
**याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।।७।।**

अज्ञानी जीव बाह्य आकुलतासे स्वयंको सुखी मानता है। लेकिन सम्यग्दर्शन बिना वह दुःखी ही है। चींटी गुड़ खाती हो उस समय भी दुःखी है, मनुष्य आमरस, रोटी और पतरवेलिया खा रहा हो उस समय भी दुःखी है, स्वर्गके मिथ्यादृष्टि देव अमृतका स्वाद लेते हो उस समय भी दुःखका ही वेदन है; लेकिन वे जीव भ्रमसे स्वयंको सुखी मानते है। अरे भाई, यह तो अशुभ इच्छा है, पाप है, आकुलता है, उसमें दुःखका ही वेदन है। मुखमें आम रस पडा हो उस समय दुःखका ही स्वाद आता है; आमका नहीं। यह तो अशुभकी बात हुई, किन्तु शुभ-परिणाम हो, शुक्ल लेश्या हो; उस समय अज्ञानी जीव दुःखी ही है। जहाँ सुख भरा है उस वस्तुकी तो उसे खबर नहीं है। मोक्षमें आकुलता बिनाका सुख है, वहाँ कोई विषयोंकी इच्छा नहीं है।

'मोक्षमें रस-रोटी आदि तो नहीं !' किन्तु हो कहाँसे ? वहाँपर कहाँ आकुलता है ? जहाँ खानेकी इच्छा ही नहीं वहाँ खुराकका क्या काम ? जहाँ आत्मामेंसे ही सुख अनुभवमें आता है वहाँ बाह्य विषयोंका क्या काम है ? जहाँ आत्मामें सहज सुखमें ही लीनता है वहाँ बाह्य पदार्थोंकी इच्छा कैसे हो ? सुख तो आत्मामेंसे आता है, कोई बाह्यवस्तुमेंसे नहीं आता है। बाह्य पदार्थोंके भोगकी कौन इच्छा करता है ?–कि जो इच्छासे दुःखी हो वह, जो स्वयं सुखी हो वह अन्य पदार्थोंकी कैसे इच्छा करे ? जो निरोगी हो वह दवाकी वांछा क्यों करे ? मुक्त जीवोंको जगतमें सभी पदार्थोंका ज्ञान है किन्तु किसीकी इच्छा नहीं, इच्छा नहीं इसलिये दुःख नहीं है। स्वयंके चैतन्यसुखके वेदनमें ही वे लीन है।—ऐसी मोक्षदशाको पहिचाने तो आत्माके स्वभावका ज्ञान हो जाय, रागमेंसे और विषयोंमेंसे सुखबुद्धि उड़ जायेगी

रे! कर्म है नहिं ज्ञान, क्योंकि कर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु कर्म अन्य—जिनवर कहे।।३९७।।

और उससे भिन्नताका भान हो–इसका नाम वीतरागविज्ञान।

जिन्हें ऐसा वीतरागविज्ञान नहीं, विषयोंमें और रागमें जिन्हें सुख लगता है, उन्हें वास्तवमें मोक्षकी चाह नहीं है। मोक्षको वह पहिचानता ही नहीं, वह तो रागसे–विषयोंकी ही इच्छा करता है, अहा ! मोक्ष वह तो परम आनंद है, जगत्में कोई पदार्थकी जिन्हें अपेक्षा नहीं, एक आत्मामें ही परिपूर्ण प्रकट आनंद है। ज्ञानी उसकी भावना भाता है कि—

सादि अनंत अनंत समाधिसुखमां
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो...
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?

अज्ञानीको तो ऐसे मोक्षकी खबर भी नहीं है, अर्थात् अज्ञानसे वह मोक्षके बदले रागकी भावना भाता है। (अज्ञानीसे जो पुण्य इच्छे, हेतु जो संसारका।) मोक्षमें राग बिनाकी पूर्ण शांति है; यहाँ पर रागका जितना अभाव हुआ उतनी ही शांति है, कोई बाह्य पदार्थोंके भोगसे शांति आती नहीं है; बाह्य पदार्थों जड़ और पर है, उसकी इच्छा वह दुःख है; 'सुख'में किसीकी इच्छा होती नहीं, सुख तो आत्माका स्वभाव है। ऐसा पूर्ण सुख वह मोक्ष है।

मोक्षमें सिद्धभगवान क्या करते है ? वे सदाकाल अपने आनंदका भोग करते है। वे परका कुछ भी नहीं करते ? नहीं; तब अज्ञानी कहता है कि 'हमारा कुछ न करे ऐसे सिद्धभगवान हमारे किस कामके ?—ऐसे सिद्ध हमें नहीं चाहिये;' अर्थात् कि मोक्ष ही उसको नहीं चाहिये, उसे तो परकी कर्तृत्वबुद्धिके मिथ्यात्वमें भटकना है। अरे भाई ! यहाँ तू क्या कर रहा है ? परका तो कुछ कर सकता नहीं, तू मात्र तेरेमें राग और अज्ञान करके दुःखको भोगता है; वह संसार है; और सिद्धभगवंत वीतराग-विज्ञान द्वारा परमसुखको भोगते है, वे निजानंदको भोगते है और आकुलता बिलकुल करते नहीं है, वह मोक्ष है। सिद्ध भगवंतोंको स्वरूपमें पूर्ण स्थिरता होती है इसलिये पूर्ण सुख है। साधकको भी जितनी स्वरूपमें स्थिरता उतना सुख है। अज्ञानीको तो स्वरूप मालूम नहीं अर्थात् रागादि परभावमें स्थिरतासे वह दुःखी है; मोक्षसुख कैसा हो उसे वह पहिचानता नहीं है।

आत्मा स्वयं आनंदस्वरूप, केवलज्ञान–शक्तिवाला है, स्वसन्मुख होकर उस शक्तिको प्रकट करना चाहिये उसके बदले अज्ञानी राग प्रकट करके उससे लाभ मानता

रे! धर्म नहिं है ज्ञान, क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु धर्म अन्य—जिनवर कहे॥३९८॥

है। आत्मशक्तिकी प्रतीतरूप सम्यग्दर्शन बिना संवर-निर्जरा या मोक्ष नहीं होता। इच्छासे पृथक् चैतन्यस्वरूपको बिना जाने इच्छाको कौन रोकेगा? निजस्वरूपमें स्थिर होते ऐसा आनंद और शुद्धता प्रकट हो कि अन्य इच्छा ही न रहे, तब इच्छाके निरोधरूप तप और निर्जरा होती है।

मैं कौन हूँ ऐसा जिसको भान नहीं वह ठहरेगा किसमें? अभी को जिसको ऐसी बुद्धि है कि दुनियामें जीवोंका कल्याण करनेके लिये मुझे राग करना, अन्यका कल्याण होता हो तो मुझे चाहे भव करना पडे !–यह बुद्धि मिथ्यादृष्टिकी है। उसने रागको लाभरूप माना है और रागरहित स्वरूपको जाना नहीं। अरे मूढ ! तेरे राग करनेसे अन्यका कल्याण हो जानेवाला है? अन्यका तो कल्याण वह करेगा तब होगा कि तू कर देनेवाला है? अभी तो तेरे कल्याणका भी तुझे पता नहीं। 'अन्यको तारे वह तिर जाय' ऐसी पराश्रयकी बात लोगोंको अच्छी लगे लेकिन वह यथार्थ चीज नहीं है। और 'तिरे वह तार दे' ऐसा भी नही है। लोगोंको पराश्रयबुद्धि होनेसे मानों कि अन्य कोई ज्ञानी या भगवान तार देंगे ! ऐसा मानते है। जीव स्वयं अपने आत्माकी पहिचान करके, वीतरागविज्ञान द्वारा रागका अभाव करके तिर जाता है; वह सामनेवाले जीव भी जब इस प्रकार करेंगे तभी तिरेंगे। इसमें यह जीव कुछ करता नहीं। परको तारनेकी इच्छा आत्माका स्वरूप नहीं, उस इच्छासे या वाणीसे आत्माको लाभ नहीं है। ज्ञानस्वरूपी आत्मा उन दोनोंसे भिन्न है। उसके वेदनमें इच्छाका अभाव है। इस प्रकार जिन्होंने इच्छाको और ज्ञानको भिन्न जाना है उसे ही इच्छाके निरोधरूप तप होता है और उसे ही निर्जरा होती है। शरीरको कष्ट देनेसे निर्जरा होगी ऐसा माने उसे निजशक्तिके विकासरूप निर्जराकी खबर नहीं, उसे तो देहबुद्धि है अर्थात् मिथ्यात्वका बडा आस्रव है। निर्जरामें तो आत्माकी शक्तिका विकास है, शुद्धताकी वृद्धि है, आनंद है, कष्ट नहीं, ऐसी निर्जरा वह ही मोक्षका कारण है।

अज्ञानी देहमें और रागमें एकत्वबुद्धिपूर्वक जो तप करता है वह वास्तवमें तप नहीं है, वह मोक्षके कारणरूप निर्जरा उसमें होती नहीं, उसका तप तो बाल-तप है अर्थात् कि मिथ्या तप है; उसमें अकाम निर्जरा है लेकिन उसमें कोई मोक्षका कारण नहीं। मोक्षका कारण तो सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यक् तप है, उससे सकाम-निर्जरा होती है। निर्जराके ऐसे स्वरूपको अज्ञानी जानता नहीं है, और अन्य प्रकारसे मानकर संसारमें भटकता है। वीतराग-

नहिं है अधर्म जु ज्ञान, क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य अधर्म अन्य—जिनवर कहे॥३९९॥

विज्ञान बिना भटकना मिटेगा नहि।

भाषा या इच्छा वह दोनों जीवका धर्म नहीं। सामनेवाला जीव समझे या विरोध करे उसमें इस जीवको कोई लाभ या नुकशान नहीं है। अन्यको समझानेका विकल्प भी स्वयंके बंधका कारण है–फिर चाहे तीर्थंकरप्रकृतिका कर्म बंध हो, वह भी एक बंधन ही है न ?और जिससे बंध हो वह धर्म कैसे हो ?–मोक्षका कारण कैसे हो? तीर्थंकरप्रकृतिका बंध वैसे तो धर्मीको ही होता है, किन्तु वह धर्मसे बंधती नहीं, धर्मके साथ जो राग शेष रहा उससे बंधती है। धर्मीको वह रागका उस प्रकृतिका उसके फलका आदर नहीं, उससे वह स्वयंका लाभ मानते नहीं, उससे भिन्नस्वरूप स्वयंका अनुभव करते है। जितनी सम्यग्दर्शनपूर्वक वीतरागता हुई उतना ही लाभ है और उतना ही धर्म है। आत्महितके उपायरूप ऐसे वीतरागविज्ञानको अज्ञानी पहिचानता नहीं। उसे तो वह कष्टदायक मानता है और रागादिको सुखदायक मानता है। ऐसी विपरीत मान्यतापूर्वक उसने व्रत-तप आदि विपरीत ही होता है–यह बात अब आगेकी गाथामें कहेंगे। तत्त्वकी समझमें ऐसी अनादिकी भूल है उसे छोड़नेके लिये श्रीगुरुकी हितशिक्षा है।

भाई, तेरे आत्माके भान बिना तू बहुत दुःखी हुआ। आत्माके भान बिना परसन्मुखके वेग अटकता नहीं, इच्छा तूटती नहीं और दुःख मिटता नही है। जिन्होंने आत्माको देहसे भिन्न जाना है वह देहमें रोगादिके समय भी आत्मस्वरूपकी सावधानी चूकते नहीं। लाख प्रतिकूलता हो फिर भी मुझे क्या ?–वे कोई मेरेमें नहीं है। परद्रव्य छेदन हो या भेदन हो, आये आ जाये उससे मुझे क्या ? मैं तो ज्ञान हूँ; ज्ञानमें इच्छा भी नहीं और संयोग भी नहीं। जिन्हें ऐसे निजरूपका भान नहीं वे कदाचित् भगवानका नाम लेते लेते प्राण त्याग करे तदापि वह देहमें और रागमें ही मूर्छित है, उससे भिन्न निजस्वरूपकी जागृति उसे नहीं है। उसे मोक्षमार्ग या मोक्षकी खबर नहीं है।

कोई ऐसा माने कि देह और आत्मा एक है, कोई ऐसा माने कि राग और आत्मा एक है, और कोई ऐसा माने कि मोक्षमें एक आत्मा अन्य आत्मामें मिल जाता है–तो सभी स्व-परकी एकत्वबुद्धिवाले समान ही है। जैसे यहाँ प्रत्येक आत्मा पृथक् अपने-अपने भावमें है, वैसे मोक्षदशामें भी प्रत्येक जीव मुक्तजीव पृथक् अपने अपने स्वरूपमें ही विद्यमान है....प्रत्येकका स्वतंत्र अस्तित्व है। (क्रमशः) ✻

रे! काल है नहिं ज्ञान, क्योंकि काल कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु काल अन्य—प्रभू कहे॥४००॥

## अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

### ज्ञान अधिकार

जड़कर्म परिभ्रमणका कारण नहीं हैं, राग भी भवभ्रमणका मूल कारण नहीं है, परन्तु राग और ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानकी एकत्वबुद्धि ही संसार और संसारका कारण हैं। भावकर्म–रागद्वेष होते हैं वह एक समयकी अशुद्ध पर्याय है। इतना ही मैं हूँ, उसके आधारसे लाभ होता है, शुभरागके आधारसे ज्ञान विकसित होता है ऐसी पर्यायबुद्धि ही संसार है। रागसे–ज्ञेयसे ज्ञान नहीं है, त्रैकालिक ज्ञानस्वभावसे ही मेरा सर्वस्व है, स्वाश्रय ज्ञातापना ही धर्म है। मेरा स्वभाव जाननेका ही है। परकी हिंसा या दया, शरीरकी क्रिया, भाषा आदि मेरे आधीन नहीं है। ज्ञायक मात्रपनेमें श्रद्धा, ज्ञान और लीनता वह धर्म है। शुभाशुभरागका मैं ज्ञाता हूँ, ज्ञानस्वभावमें भव और भवभ्रमणकी शक्ति नहीं है, मैं तो नित्य ज्ञाता स्वभावी ही हूँ—ऐसा दृढ निश्चय वह भवरहितकी श्रद्धा है और भव–विकाररहितका ज्ञान ही सम्यक्मति–श्रुतज्ञान है।

मेरे ज्ञानकी पर्याय मेचक–अनेक प्रकारको जानती है, वह मेरा निश्चय स्वसामर्थ्य है। ज्ञान परको जानता है ऐसा कहना वह उपचार है। अपने मति–श्रुतज्ञानमें रहकर जानता हूँ, वह निश्चय है। लोकालोकको जानता है वह उपचार है। केवलीको भी इसप्रकार निश्चय–व्यवहार जानना।

ज्ञेय बदले, शरीरका नाश हो—वियोग हो उससे कहीं मेरी ज्ञानवस्तुका नाश नहीं होता। ज्ञान किसको मारता या किसे जीवित रखता है? ज्ञान तो मात्र जानता है। निश्चयसे ज्ञान अपनी ज्ञानपर्यायको जानता है। परका ज्ञाता हूँ—ऐसा कहना वह उपचार है। परको मारे या बचाये, आहार–पानी ले या दे, ऐसा व्यवहार ज्ञानमें नहीं है। क्योंकि परकी पर्यायमें स्वका अत्यन्त अभाव है; इसलिए किसीके कारण किसीका सत् है ऐसा नहीं है। जिस समय जैसा होता है वैसा ज्ञान तो अपनी पर्यायके कारण उसे जानता है, परके कारण ज्ञानका अस्तित्व नहीं है, और ज्ञेय पलटनेसे ज्ञानीका विनाश हो जाए—ऐसा नहीं है। पर जीव मरा

आकाश है नहिं ज्ञान, क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य—प्रभू कहे॥४०१॥

उसके कारण ज्ञानमें कोई हानि हो गई–ऐसा नहीं है। ज्ञान तो उसको जाननेवाला है। ज्ञान त्रिकाल है, वह सत् है और ज्ञानकी पर्याय भी अपनेसे ही सत् है। आहार–जल आए या जाए—उसके कारण ज्ञानमें कोई लाभ–हानि नहीं है, परज्ञेय ज्ञानमें ज्ञात होते हैं वह भी उपचारसे है, वास्तवमें पर द्रव्य ज्ञानमें आ नहीं जाते, राग और निमित्तके अवलम्बन बिना स्वयं अपनेसे ही जाननेका ज्ञानका स्वभाव है।

लोकालोक आत्मामें नहीं हैं, इसलिए लोकालोकका ज्ञान उपचारसे कहा, परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि केवली भगवानको लोकालोकका ज्ञान ही नहीं है।

कोई प्रश्न करे कि—लोकालोकका ज्ञान उपचारसे कहा, तो सर्वज्ञपद भी उपचारसे हुआ। तो क्या सर्वज्ञपद झूठा है उपचार तो असत्य है और आप कहते हैं कि लोकालोकका ज्ञान तो उपचारसे है, तो क्या सर्वज्ञपद भी उपचारसे है?

समाधान :—अरे भाई ! जिसके ज्ञानसामर्थ्यमें उपचारमात्रसे भी लोकालोक भासित हुआ, उस ज्ञानका सामर्थ्य कितना !! जिसका व्यवहारसामर्थ्य भी ईतना, उसके निश्चयसामर्थ्यका तो कहना ही क्या? परज्ञेय आत्मामें नहीं है, इसलिए उनका ज्ञान उपचारसे कहा है, परन्तु ज्ञानका सामर्थ्य है वह कहीं उपचारसे नहीं है। लोकालोककी अपेक्षा अनंतगुना जाननेकी ज्ञानकी अपार शक्ति है। परमात्मप्रकाशमें कहा है कि—जैसे मण्डप तक बेल फैलती है, परन्तु उसमें अभी अधिक फैलनेकी शक्ति है, वैसे ही यह ज्ञान लोकालोकके मण्डप तक फैल चुका है, परन्तु इतना ही जाननेकी ज्ञानकी शक्ति है ऐसा नहीं है। अनन्त लोकालोक होते तो उनको भी जान लेनेकी ज्ञानकी शक्ति है, वह तो ज्ञानका स्वतः स्वभाव है। देखो, यह ज्ञानका सामर्थ्य!

आत्मा लोकालोकको जानता है और स्वयं अपनेको नहीं जानता—ऐसा कोई व्यवहारनयसे कहे तो उसमें क्या दोष है? अर्थात् कोई दोष नहीं है, परन्तु वहाँ उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि लोकालोकको जाननेका सामर्थ्य ज्ञानमें नहीं है। लोकालोकको व्यवहारसे जानता है और स्वयं अपनेको तो निश्चयसे जानता है। यदि निश्चयसे लोकालोकको जाने तो वह परके साथ एकमेक हो जाए ! और यदि व्यवहारसे अपनेको जाने तो वह स्वयं अपने से भिन्न सिद्ध हो; इसलिको कहा है कि निश्चयसे आत्मा अपनेको ही तन्मयरूपसे जानता

रे! ज्ञान अध्यवसान नहिं, क्योंकि अचेतनरूप है।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य अध्यवसान है॥४०२॥

है, लोकालोकको नहीं। परन्तु आत्मामें सर्वज्ञशक्ति है वह कहीं उपचारसे नहीं है, वह तो वास्तविक स्वरूप है। जिनको तन्मय हुए बिना लोकालोक उपचारसे भासित हुआ उनके निश्चय ज्ञानकी महिमाका क्या कहना? सर्वज्ञता को नहीं माननेवाले एक पण्डित तत्त्वार्थवृत्तिकी प्रस्तावनामें लिखते हैं कि—''भगवान महावीर तो विशिष्ट तत्त्वविचारक थे,'' तो उन्हें वस्तुस्वभावकी श्रद्धा नहीं है।

ज्ञानकी शक्ति लोकालोकको उपचारसे जाननेकी है, परन्तु अनन्त लोकालोक हों तो उनको भी ज्ञान जान ले ऐसा उसका सामर्थ्य है। यह ज्ञान स्वसंवेदनरूप होता हुआ सर्वको जाने ऐसा सहजस्वभाववाला है। किसी निमित्तका वेदन अथवा पुण्य–पापके विकल्पका वेदन करे और सर्वको जाने ऐसा नहीं है।

देखो, धर्म तो अंतरकी वस्तु है। वस्तुका स्वभाव ज्ञायक है। परमें एकमेक हुए बिना स्वभाव स्वसंवेदनसे सर्वको जानता है। निश्चय क्या? ऐसा न जाने उसका परको जानना भी सच्चा नहीं है। सच्चे देव–गुरु–शास्त्रकी व्यवहार श्रद्धाका जानना व्यवहारसे सच्चा कब होता है? कि–जब निश्चयसे स्वसंवेदनरूप स्वको जाने तब।

परकी अपेक्षा स्व है, स्वकी अपेक्षा पर है। परस्पर अभावरूप स्वतंत्र अस्तित्व है। स्वमें अथवा स्वके कारण पर नहीं, परके कारण स्व नहीं। निश्चयसे परके वेदन बिना पूर्ण स्वरूपको जानता है तथापि परको जाननेरूप उपचार भी है—ऐसी विवक्षासे वस्तुसिद्धि है। इसप्रकार सम्यग्ज्ञानसे स्वरूप–अनुभव होता है। (क्रमशः) ✻

सम्यक्दृष्टिने शुद्ध स्वरूपका अनुभव किया उसके पश्चात् (उसे ऐसी भावना रहती है कि) वह एक क्षणके लिए भी छोडने योग्य नहीं। परमात्माके पहलूमें आनेके बाद एक क्षण भी परमात्माका पहलू छोडने योग्य नहीं और पुण्य-पापके पहलुमें जाना योग्य नहीं। एक क्षण भी शुद्धात्माको विस्मृत करना योग्य नहीं। राग-क्रिया कभी भी ग्रहण करनेलायक नहीं और शुद्धात्मा कभी छोडनेयोग्य नहीं। अरे! जिसे रागका रंग चढ गया है, उसे परमात्माका रंग कैसे चढे? और जिसे परमात्माका रंग चढा है, उसे रागका रंग कैसे चढे? अभी सम्यग्दृष्टिको राग होता तो है परंतु रागका रंग नहीं चढता और शुद्धात्माका रंग एक समय मात्र भी नहीं उतरता। सम्यग्दृष्टिको अतीन्द्रिय सुखका अनुभव धारा-प्रवाहरूपसे होता रहता है–यही इसकी महत्ता है। –पूज्य गुरुदेवश्री

रे! सर्वदा जाने हि इससे जीव ज्ञायक ज्ञानि है।
अरु ज्ञान है ज्ञायकसे अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है॥४०३॥

# आदर्श पुत्र और आदर्श माता

पुत्र कहता है–

हे माता ! निजानंदका प्यासा मेरा आत्मा अब इस संसारकी दुःखवेदनासे यातनाको प्राप्त हुआ है....चैतन्यसुखके अतिरिक्त अन्य कहीं चैन नहीं है...आत्माके आनंदमें ही चित्त लगा हुआ है....उसके अलावा कहीं पर भी मेरा चित्त लगता नहीं है....बाह्यके निःसार भाव अनंतकाल किये अब वहाँसे हटकर मेरा परिणमन अंदरकी ओर ढलता है.....अंदर जहाँ मेरा आनंद भरा वहाँ मैं जाता हूँ....इसलिये हे माता ! आशीर्वाद सह अनुमति प्रदान कर।

माता कहती है–

हे पुत्र ! जो तेरा मार्ग है वह ही मेरा मार्ग है। तेरा आत्मा भवदुःखसे मुक्त हो और आत्मीक सुखको प्राप्त हो उसके जैसा उत्तम क्या ? माता उत्साहित होकर अपने पुत्रको सुखप्राप्तिका आशिष देती है।

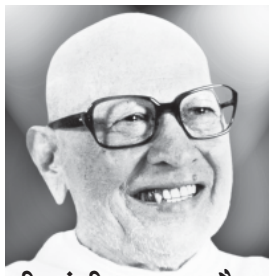

# युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न : द्रव्यलिंगी इतनी कठोर क्रियायें करता है, शास्त्राध्ययन भी गंभीर करता है, तथापि इन सबको स्थूल क्यों कहा ?

उत्तर : द्रव्यलिंगी क्षयोपशमकी धारणासे और बाह्यत्यागसे यह सबकुछ करता है। बाह्यमें उसके वैराग्य भी विशेष दिखलाई पड़ता है। हजारों रानियाँ और महान वैभव-राजपाट भी उसने छोड़ दिया है, फिर भी उसका वैराग्य सच्चा नहीं है। पुण्य-पापके परिणामसे अन्तरंगमें विरक्ति उसके हुई नहीं है। स्वभाव महाप्रभु है, अनन्तानंत गुणोंका समुद्र आनन्दसे परिपूर्ण है, उसकी महिमा अभी तक उसे अन्दरसे आई नहीं है।

प्रश्न : द्रव्यलिंगीको शुभमें रुचि है या अशुभमें भी ?

उत्तर : द्रव्यलिंगीको शुभमें रुचि है।

प्रश्न : काया और कषायमें एकत्व है, उसका विचार उसको आता है या नहीं ?

उत्तर : उसका विचार उसको नहीं आता।

प्रश्न : तो धारणाज्ञान भी उसको सच्चा नहीं हुआ ?

उत्तर : तत्त्वोंके जानपनेका धारणाज्ञान तो सच्चा है; परंतु स्वयं कहाँ अटकता है, वह उसकी पकड़में नहीं आता। कषायकी विशेष मन्दता है, उसीमें स्वानुभव मानता है।

प्रश्न : समयसार गाथा ३में कहा है कि एक द्रव्य अन्य द्रव्यका स्पर्श नहीं करता। अतः जीव शरीरको तथा एक शरीर अन्य शरीरको स्पर्श नहीं करता। जीव भोजन नहीं कर सकता, बोल नहीं सकता, अन्य पदार्थोंको चुरा नहीं सकता, धन-धान्यादिक ग्रहण नहीं कर सकता, तो मुनिराज हिंसादि पापोंका त्याग क्यों करते हैं ?

उत्तर : एक द्रव्य अन्य द्रव्यको स्पर्श नहीं करता, यह तो महा सिद्धान्त है, ऐसा ही वस्तुस्वरूप है। परद्रव्यकी क्रियासे जीवको बन्ध होता ही नहीं, परन्तु परद्रव्यके लक्ष्यसे होनेवाले रागादिभाव जीवको बन्धके कारण होनेसे मुनिराज अपने हिंसादि पाप भावोंको त्याग

**सम्यक्त्व, अरु संयम, तथा पूर्वांगगत सब सूत्र जो।**
**धर्माधरम, दीक्षा सबहि, बुध पुरुष माने ज्ञानको॥४०४॥**

करते हैं, अतः पाप भावोंके त्यागके निमित्तभूत बाह्य हिंसादि परद्रव्योंकी क्रियाका त्याग किया—ऐसा उपचारसे कहा जाता है।

प्रश्न : ज्ञान रहित वैराग्य तो रुंधा हुआ कषाय है?

उत्तर : हाँ, आत्माके ज्ञान-भान रहित कषायकी मन्दताके वैराग्यरूप परिणाममें कषाय दबा हुआ है, कषाय टला नहीं है। जब यह दबा हुआ–रूँधा हुआ कषाय प्रस्फुटित होगा, तभी नरक-निगोदमें चला जायेगा। भले ही बाह्यमें राजपाट-स्त्री-पुत्रादि छोड़े हों; तथापि आत्मभान बिना कषाय टलता नहीं, दबता हैं; और कालक्रमसे प्रस्फुटित होकर तीव्र कषायके रूपमें प्रकट होता है।

प्रश्न : भावलिंगी मुनिका लक्षण क्या है?

उत्तर : अन्तर्मुहूर्तमें छठवें-सातवें गुणस्थानमें आता-जाता रहे वही लक्षण भावलिंगी मुनिका है। छठे गुणस्थानमेंभी अन्दर शुद्ध-परिणति रहती है, वही भावलिंगीपना है। मुनिदशामें तो आनन्दका प्रचुर स्वसंवेदन होता है। चतुर्थ-पंचम गुणस्थानमें भी आनन्दका वेदन होता है, किन्तु अल्प होता है। जबकि भावलिंगी मुनिके प्रचुर होता है।

प्रश्न : भावलिंगी मुनिको छठे गुणस्थानमें शुभबाव आता है। क्या वह भी मोक्षमार्ग है? क्या उसे वह श्रेयस्कर-सुखकर लगता है? यदि नहीं तो क्यों?

उत्तर : भावलिंगी मुनिको छठे गुणस्थानमें महाव्रतादिका शुभराग आता है–वह प्रमाद है, शास्त्रमें उसे जगपंथ कहा है; वह मोक्षपंथ–मोक्षमार्ग नहीं है। स्वरूपमें ठहर जाना ही मुनिदशा है, उसमेंसे निकलकर शुभरागमें आना मुनिको सुहाता नहीं है। जिसप्रकार चक्रवर्तीको अपने सुखदायी महलमेंसे बाहर आना रुचता नहीं है; उसी प्रकार चैतन्य महलमें जो विश्रान्तिसे बैठा है उसे वहाँसे बाहर निकलना पसन्द नहीं आता। अशुभराग तो पापरूप जहर हैं ही, परन्तु शुभराग भी दुःखरूप बंधन है। आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दकी मूर्ति है। जिसे ऐसे निजस्वरूपकी पहिचान हुई है, उसे फिर स्वरूपसे बाहर निकलनेकी इच्छा नहीं होती। जिसकी ९६ हजार रानियाँ, ९६ करोड़ ग्राम और १६ हजार देव सेवा करनेवाले हों, ऐसे बाह्य वैभवमें रहनेवाला चक्रवर्ती उस वैभवको मलके समान क्षणमात्रमें त्यागकर आनन्दका उग्र स्वाद लेनेके लिए वनमें चला जाता है। इस अतीन्द्रिय आनन्दका उग्र–प्रचुर स्वाद लेनेवालेको शुभरागरूपी आकुलतामें आना कठिन लगता है, भारस्वरूप लगता है, बाहर आना रुचता नहीं। शास्त्र-रचना अथवा उपदेश देनेका विकल्प आता तो है, परन्तु रंचमात्र भी उसे श्रेयस्कर नहीं मानता–हेय ही मानता है।

# प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

**प्रश्न :—** *श्रीमद्जीने एक जगह लिखा है कि ज्ञानी पुरुषकी अपेक्षा यदि जीवको परिग्रहके प्रति विशेष प्रेम हो तो वास्तवमें वह आत्माको समझने या प्राप्त करनेयोग्य नहीं है, तो उसका क्या अर्थ है?*

**समाधान :—**जिन्हें ज्ञानकी प्राप्ति हुई है ऐसे ज्ञानीकी अपेक्षा जिसे परिग्रहके प्रति प्रेम यानि कि बाहरका रस बढ़ जाये अर्थात् परिग्रहकी महिमा लगे और ज्ञानीके प्रति महिमा न आये तो वह वास्तवमें पात्र नहीं है। उसे परिग्रह गौण हो जाना चाहिये, बाहरका रस उतर जाना चाहिये तो ज्ञानीकी महिमा आये। उसे ज्ञान चाहिये, इसलिए उसके ज्ञानमें आत्मा तरफकी महिमा आनी चाहिए। 'ज्ञानीके प्रतिकी महिमा अर्थात् अंतरमें आत्माके प्रति महिमा' ऐसा उसका अर्थ निकलता है। इसलिए इस प्रकारकी महिमा हो और परिग्रहकी गौणता हो जाय तभी ही उसे ज्ञानीके प्रति अर्पणता और आत्माके प्रति महिमा आती है।—दोनोंका मेल है।

मुमुक्षु :—क्या ज्ञानी और आत्माकी महिमाको मेल है?

बहिनश्री :—हाँ, दोनोंको मेल है। ज्ञानीकी महिमा करता है उसका अर्थ यह है कि उसे आत्मा चाहिए। उसे अंतरमें आत्म 'प्राप्ति'का ध्येय है।

**प्रश्न :—** *कोई पूर्वभवका कारण होगा?*

**समाधान :—**पूर्वभवका कारण और वर्तमान अपनी योग्यता। पूर्वभवमें सुना हो वह भी कारण होता है और वर्तमान अपना पुरुषार्थ भी कारण होता है। गुरुदेवसे मार्ग सुना और वर्तमान अपना पुरुषार्थ हुआ उसके साथ पूर्वकी योग्यता–संस्कार भी कारण होता है।

जब जीव तैयारी करता है तब वह नया ही होता है। पूर्वभवमें तैयारी हुई हो तो उस समय नया था। इसलिए पूर्वके संस्कारको मुख्य नहीं करना।

**प्रश्न :—** *'यही करने जैसा है' ऐसा आपको लगा, वैसा हमें भी लगे उसके लिए अपनी पूर्वभूमिकाकी थोड़ी बात करनेकी कृपा करें।*

**समाधान :—**'यही करने जैसा है' ऐसी भावनाके पीछे प्रयत्न न चले तबतक

यों आत्मा जिसका अमूर्तिक सो न आहारक बने।
पुद्गलमयी आहार यों आहार तो मूर्तिक अरे॥४०५॥

शांति नहीं होती। ऐसा विचार आये कि 'यही करने जैसा है' ऐसा निश्चय किया तो भी पुरुषार्थ क्यों नहीं होता ? क्या मेरे निर्णयमें कमी है ? है क्या ?—ऐसे विचार आते। 'यही करने जैसा है' ऐसे भावना थी न ! इसलिए वैसे ही विचार आया करते थे। अब भी क्यों पुरुषार्थ नहीं उभरता ? क्या अभी भी रुचि कहीं और है ? अब भी क्यों आकुलता नहीं होती ?—ऐसे विचार पुरुषार्थकी तीव्रता हेतु आते ही रहते थे।

गुरुदेव कहते थे कि स्वानुभूतिमें उस पार आत्मा बिराजता है। निर्विकल्प दशा सबसे निराली है। यद्यपि बीचमें क्या मार्ग आता है उसकी अधिक स्पष्टता तो कुछ थी नहीं, तथापि गुरुदेव निर्विकल्पदशाको स्वानुभूति कहते हैं और वह मुक्तिका मार्ग है; तथा आत्मा जुदा है ऐसा कहते हैं।—कुछ इसप्रकारका पकड़में आया था। सब (करांचीको) छोड़ा, अब क्या करनेका है ?—जबतक अंतरमेंसे शांति प्राप्त न हो, तबतक चैन नहीं पड़नेका। अंतरमें जो विकल्पोंकी माला (पंक्ति) है वह भी आकुलता है, उससे छूटना ही सच्चा मार्ग है। यह जो विभावोंका चक्र (क्रम) एकके बाद एक चलता है, उससे आत्मा जुदा है; वह अंतरमेंसे प्राप्त होता है। इन सबसे (अन्यमतोंसे) भिन्न सत्य मार्ग है। ऐसे विचार आते थे। सम्यग्दर्शन होनेके बाद ऐसा निश्चय हो गया कि यही मार्ग है; गुरुदेवने कहा वह यही है।

**प्रश्न :**—*द्रव्य एवं पर्यायके बीच कोई साँध है कि यह द्रव्य–पर्यायका जोड़ा है और उसमेंसे द्रव्यको भिन्न करके ग्रहण किया जा सके?*

**समाधान :**—द्रव्य स्वयं शाश्वत है, उसमें द्रव्य–पर्यायका जोड़ा है। विभावपर्याय तो प्रत्यक्ष आकुलतारूप है; और जो शुद्धपर्याय है वह वर्तमानमें प्रकट नहीं है। शुद्धपर्याय कहाँ प्रकट है ? द्रव्य जो कि शुद्धस्वरूप है उसे ग्रहण करनेका है। जहाँ द्रव्यपर दृष्टि गई वहाँ अंशतः शुद्धपर्याय तो उसके साथ ही साथ प्रकट होती है। उस समय साथ रहा हुआ ज्ञान जानता है कि यह जो विभावपर्याय है वह मैं नहीं हूँ; यह ज्ञायक है सो मैं हूँ; शुद्धपर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ। चैतन्यको ग्रहण किया उसमें पर्याय एवं द्रव्यका सब ज्ञान साथ आ जाता है। किसीको कहीं पृथक् नहीं करना पड़ता, क्योंकि विभावपर्याय तो मलिन ही है। आप अपनेको ग्रहण करे वहाँ विभावपर्याय तो जुदी ही रहती है और स्वभावपर्याय तो उसके साथ ही साथ प्रकट हो रही है; उसे पृथक् कहाँ करनी है ? एक अखंड द्रव्यको ग्रहण किया वहाँ बीचमें शुद्धपर्यायें प्रकट होती ही हैं; उनमें जीवको रुकना कहाँ है ? शुद्धपर्यायका अंशतः शान्तिरूप वेदन होता है, उसे कहीं ग्रहण नहीं करना है; वह जाननेमें तथा वेदनमें आती है।

# बाल विभाग

## पुण्य-पापकी विचित्रता

(श्री महावीरस्वामीके समय में श्री जम्बूस्वामीसे पूर्व हुए कामदेव पदवी धारक, तद्भव मोक्षगामी श्री जीवंधरस्वामीका चरित्र)

राजपुरी नगरीके राजा जीवंधर स्वयंकी रानीमें इतने आसक्त हुए कि उन्होंने अपना राज्य मंत्री काष्ठांगारको देकर विषयभोगमें लीन हो गये। इस ओर दुष्ट विचारसे काष्ठांगारने राजाको बंदी बनानेका आदेश दे दिया। यह बात मालूम होने पर राजाने गर्भस्थ रानीको केकीयंत्रमें बिठाकर आकाशमार्गसे अन्यत्र रवाना कर दिया। केकीयंत्रने रानीको स्मशानभूमिमें पहुंचा दिया। वहाँ पर जीवंधरकुमारका जन्म हुआ। दैवयोगसे एक देवीने आकर रानीको आश्वस्त किया कि पुत्रका लालन-पालन राजकुमारोचित होगा। इस ओर जीवंधरके पुण्यसे गंधोत्कट सेठ अपने मृत पुत्रका अंतिम संस्कार करने आये थे और अवधिज्ञानी मुनिके कथनानुसार उन्हें जीवंधरकी प्राप्ति होती है और घर पर आकर पुत्रको सुनंदा शेठनीको देते हैं। जीवंधरकुमार चंद्रमाकी भांति वृद्धि होने लगे। आर्यनंदी नामक मुनि भस्मक नामक रोगके शमन हेतु गंधोत्कट सेठकी भोजनशालामें आकर सारा भोजन खा लेते है फिर भी तृप्ति न होने पर जीवंधर अपने भोजनमेंसे कुछ भोजन देते है जिसका एक ग्रास खाने पर उनका रोग शमन हो गया फलरूप आर्यनंदी प्रत्युपकार हेतु जीवंधरको विद्वान बनानेका निर्णय करते है। पुण्योदयसे जीवंधर स्वयंवरमें गंधर्वदत्ताको जीत लेते है। एकबार एक कुत्तेने यज्ञसामग्री झूठी कर दी तो लोग उसे मार रहे थे उस समय जीवंधर उसे णमोकार मंत्र सुनाते है फलस्वरूप वह मरकर यक्ष होता है और मुश्किल समयमें स्मरण करने पर उपस्थित हो जाऊंगा ऐसा वचन देते है। पुण्योदयसे तीर्थवंदना करते रास्तेमें परोपकार करके उत्तमकुलकी कन्याके साथ विवाह होता है..... आगे...

जीवन्धरकुमारको क्षेमपुरीसे तीर्थवंदना हेतु आगे जाते समय मार्गमें एक कृषक मिला, उन्होंने उसे धर्मका ज्ञान कराया और उसे व्रती-श्रावक बनाया तथा उसे पात्र बनाकर अपनी शादीमें मिले हुए सभी आभूषणोंको दान स्वरूप देकर आगे बढ़ गया।

यात्राकी थकान मिटानेके लिये वे वनमें एकान्त स्थान पर विश्राम कर रहे थे। इतनेमें ही अनंगतिलका नामकी एक विद्याधरी युवती सामने आई और वह उन्हें देखते ही कामासक्त हो गई। उसने जीवन्धरको लुभानेके लिए स्त्रीजन्य मायाचारीके बहुत प्रयास किये; किन्तु जीवन्धर अडिग रहे। इतनेमें ही उस युवतीको अपने पतिकी आवाज सुनाई पड़ी, जो उसके वियोगमें पागल जैसा आर्तनाद करता हुआ उसी ओर आ रहा था। उसकी आवाज सुनते ही वह युवती वहाँसे चली गई। युवकको दुःखी देख जीवन्धरकुमारने उसे बहुत समझानेका प्रयास किया, तथापि वह उसके वियोगमें विह्वल ही रहा।

जो द्रव्य है पर, ग्रहण नहिं, नहिं त्याग उसका हो सके।
ऐसा हि उसका गुण कोई प्रायोगि अरु वैस्रसिक है॥४०६॥

तदनन्तर जीवन्धर यात्रा करते हुवे हेमाभा नगरीमें पहुँचे और वहाँके राजा दृढ़मित्रके अनुरोधसे राजकुमारोंको धनुर्विद्याकी कला सिखायी। राजाने प्रसन्न होकर अपनी कन्या कनकमालाका विवाह जीवन्धरकुमारके साथ करा दिया।

कनकमालासे विवाह करनेके पश्चात् जीवन्धर अनासक्तभावसे हेमाभा नगरीमें निवास कर रहे थे कि उन्हें एक दिन उनके भाई नंदाढ्यके अकस्मात् आनेका समाचार मिला। वे शीघ्र ही भाई नंदाढ्यसे वहाँ मिलने गये और नंदाढ्यको पाकर प्रसन्नतापूर्वक उसके गले मिले। कुशलक्षेम पूछनेके बाद उन्होंने नंदाढ्यसे अकस्मात् आनेका कारण पूछा।

उत्तरमें नंदाढ्यने बताया कि—'काष्ठांगारने आपको मार डाला है।' यह ज्ञात होते ही मैं भाभी गंधर्वदत्ताके पास गया। वहाँ भाभीको प्रसन्नचित्त देख मुझे इस बातका आश्चर्य हुआ कि आपके मृत्युका समाचार जानकर भी भाभी कैसे प्रसन्न हैं ? आखिर क्यों ? पूछने पर पचा चला कि उन्होंने अपनी विद्याके बलसे यह सब पहले ही ज्ञात कर लिया था कि आप यक्षेन्द्र द्वारा सुरक्षित हैं और सुख-शांतिसे रह रहे हैं। फिर मेरी आपसे मिलनेकी इच्छा जानकर उन्होंने ही मुझे विद्याबलसे आपके पास भेज दिया है। इसतरह यहाँ जीवन्धरकुमारकी छोटेभाईसे भेंट भी हुई।

एक दिन जीवन्धरकुमार चोरोंसे गायोंको छुड़ाने जंगलमें गये, वहाँ अपने मित्र पद्मास्य आदिसे भेंट हुई। प्रमुख मित्र पद्मास्यने कहा '' हम आपसे मिलने आ रहे थे तब मार्गमें ही एक आश्रममें विजयामाताजीके दर्शन हुए। माताजीने जब हमारा परिचय पूछा तब हमने आपके मित्र होनेकी बात कही। आपको काष्ठांगारने बन्दी बनाया था, यह सुनते ही वह मूर्छित हो गई। मूर्छा दूर होने पर हमने बताया कि उसी समय आपकी यक्षेन्द्रने रक्षा की थी और आप स्वस्थ और सुखपूर्वक हैं।''

अपनी जन्मदात्री माता जीवित हैं, यह जानकर जीवन्धरको उनसे मिलनेकी अतिशय जिज्ञासा एवं चिंता हुई। वे शीघ्र ही आश्रममें पहुँचकर माताजीसे मिले। उन्होंने काष्ठांगारसे अपना राज्य प्राप्त करने सम्बन्धी उनसे सलाह की तथा माताजीको आश्वासन दिया कि ''मैं अब अल्पकालमें स्वयं राजा बनूगा, आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।''

इस हेतुसे जो शुद्ध आत्मा सो नहीं कुछ भी ग्रहे।
छोड़े नहीं कुछ भी अहो! परद्रव्य जीव-अजीवमें।।४०७।।

तदन्तर जीवन्धरने माताजीको अपने मामा गोविन्दराजके यहाँ पहुँचा दिया और स्वयं राजपुरी नगरीकी ओर प्रस्थान किया।

एक दिन जीवन्धरकुमार राजपुरी नगरीमें भ्रमण करने गये, तब उनके पास एक गेंद गिरी। यह जाननेके लिए कि गेंद कहाँसे आई है उन्होंने अपनी दृष्टि उपर उठाई तो एक सुंदर युवती दिखाई दी। वे उस युवतीके रूप-सौंदर्य परम मोहित हो गये। इतनेमें ही उस कन्याका पिता सागरदत्तने आकर जीवन्धरसे कहा कि मुझे एक निमित्तज्ञानीने बताया था– ''जिस मनुष्यके आगमनसे जिस दिन बहुत समयसे रखे हुए तुम्हारे रत्न बिक जायेंगे, वही मनुष्य मेरी कन्याका पति होगा।'' आपके आगमनसे मेरे सभी रत्न बिक गये हैं। अतः आप मेरी उस कन्याका स्वीकार करो। जीवन्धरकी स्वीकृति जानकर सागरदत्तने अपनी कन्याका विवाह जीवन्धरकुमारसे करा दिया।

एक दिन बुद्धिषेण विदूषकने जीवन्धरसे कहा—''पुरुषोंकी छाया भी न सहनेवाली मानिनी सुरमंजरीके साथ आप जब विवाह करेंगे, तब हम आपको पुरुषार्थी मानेंगे।'' जीवन्धरने सुरमंजरीसे विवाह करनेकी योजना बनाई। यक्षेन्द्र द्वारा ''इच्छानुसार भेष बनाने''के प्रदत्त मंत्रसे एक अत्यन्त वृद्ध पुरुषका भेष बनाकर सुरमंजरीके महलमें प्रवेश कर गये। वहाँ उन्होंने मंत्र सिद्ध सर्वोत्तम गीत गाया; जिससे सुरमंजरी बहुत प्रभावित हुई। वृद्धको विशेष ज्ञानवान जानकर उसने अपने इच्छित वर प्राप्तिका उपाय पूछा। वृद्धने कहा ''कामदेवके मंदिरमें जाकर उसकी उपासना करनेसे तुम्हें इच्छित वरकी प्राप्ति होगी।''

सुरमंजरी उस वृद्ध पुरुष के साथ कामदेवके मंदिरमें जानेको तैयार हो गई। जीवन्धरकुमारकी योजनानुसार उस कामदेवके मंदिरमें बुद्धिषेण विदूषक छिपकर बैठा था। सुरमंजरीने पूजोपरांत कामदेवसे पूछा ''मुझे इच्छित वर कब और कैसे मिलेगा।'' सुरमंजरीकी बात सुनकर छिपा हुआ बुद्धिषेण बोला ''हे सुन्दरी ! इच्छित वर आपको प्राप्त हो चुका है, वह आपके साथ आपके पास ही है।'' सुरमंजरीने वृद्धकी ओर दृष्टि फेरी तो जीवन्धरको सामने खड़ा देखकर वह आश्चर्यमें पड़ गई और लज्जित हो गई। तदन्तर सुरमंजरीके पिता कुबेरदत्तने जीवन्धरसे उसका विधिपूर्वक विवाह संपन्न करा देते हैं।

(क्रमशः) ✻

मुनिलिंगको अथवा गृहस्थीलिंगको बहुभांतिके।
ग्रहकर कहत है मूढ़जन, 'यह लिंग मुक्तीमार्ग है'॥४०८॥

## सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१९वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ **महावीरनिर्वाण-पंचाह्निक-महोत्सव :** प्रतिवर्षानुसार 'श्री महावीर-निर्वाण-कल्याणक' —दीपावलिका वार्षिक मंगल अवसर कार्तिक वदी-११, गुरुवार, ता. ९-११-२०२३ से कार्तिक वदी ३०, सोमवार, ता. १३-११-२०२३, पाँच दिन तक 'श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणकमंडल विधानपूजा', महावीरजिनेन्द्र भक्ति, एवं अध्यात्मज्ञानोपासना आदि विविध कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ **'सुप्रभातदिन' :** कार्तिक सुदी-१—नूतन वर्षारंभका 'सुप्रभातदिन' ता. १४-११-२०२३, मंगलवारके दिन सुप्रभातस्तोत्र, पूजाभक्ति एवं गुरुदेवश्रीके सुप्रभात-प्रवचन आदि विशेष समारोहपूर्वक मनाया जायेगा।

❀ **कार्तिकी-नन्दीश्वर-अष्टाह्निका** ❀ कार्तिक सुदी ८, सोमवार, ता. २०-११-२०२३, से कार्तिक सुदी १५, सोमवार, ता. २७-११-२०२३—तक 'पंचमेरु-नन्दीश्वर पूजनविधान' एवं अध्यात्मतत्त्व ज्ञानोपासनापूर्वक आनन्दोल्लास सह मनाया जाएगा।

### वेदी शिलान्यास महोत्सव

श्री बाहुबली-जम्बूद्वीप प्रतिष्ठा महोत्सव अंतर्गत श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरके उपरी भागमें विराजमान होनेवाले चार बालयति तीर्थंकर एवं प्रवचनमंडपमें विराजमान होनेवाले तीन भगवानकी वेदी शिलान्यास महोत्सव ता. १५-१०-२०२३, रविवारके दिन मुमुक्षुओकी उपस्थितिमें हर्षोल्लास सह संपन्न हुआ। सुबह ८.३० से ९.३० पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन बादमें विनायक यंत्र आदि जिन पूजन तत्पश्चात् वेदी शिलान्यास विधि प्रारम्भ हुई। इस प्रसंग पर जिनमंदिरके उपरि भागमें जिन्होंने प्रतिमाका लाभ लिया हैं उन परिवारोंको प्रशस्तिपत्र एवं शिला रखनेका लाभ मिला था। बादमें प्रवचन मंडपमें प्रथम लाभार्थी परिवार बादमें मुमुक्षुओंको लाभ मिला था। इस प्रसंगके विधिविधान प्रतिष्ठाचार्य श्री सुभाषभाई शेठ एवं प्रतिष्ठाचार्य श्री हेमंतभाई गांधी द्वारा संपन्न कराये गये थे। इस प्रसंग पर बाहरगाँवसे अधिक संख्यामें मुमुक्षुओं उपस्थित थे।

॥ श्री कहानगुरुदेवाय नमः ॥ ॥ श्री सीमंधरदेवाय नमः ॥ ॥ श्री भगवती माताय नमः ॥

## श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ प्रेरित

## श्री कहान पुष्प परिवार आयोजित

# तेईसवीं बालसंस्कार अध्यात्म ज्ञान शिविर

[ ता. 24-12-2019 से ता. 29-12-2019 ]

अनंत उपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद् अनन्य भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके धर्मप्रभावनायोगसे हम सब मुमुक्षुगण सत्य शुद्धात्माको प्राप्त करनेका मार्ग समझ पाये हैं। यह गहरे तत्त्व संस्कारोंका सिंचन हमारे बालकोंमें भी हो यह अत्यंत आवश्यक है। इस हेतुको लक्ष्यमें रखकर श्री कहान पुष्प परिवार पिछले बाईस वर्षोंसे बाल संस्कार शिविरोंका आयोजन कर रहा है। इसी श्रृंखलामें इस वर्ष भी परमोपकारी संत पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी साधनाभूमि सुवर्णपुरीमें तेईसवीं बाल संस्कार शिविरका आयोजन किया गया है। सभी मुमुक्षुओंको निवेदन है कि वे अपने बालकोंको शिविरका लाभ लेने हेतु अवश्य पधारें।

जनवरी २०२४में महामंगल पंचकल्याणक महोत्सव भव्यातिभव्य मनाये जानेवाला है। इसलिये इस वर्ष बालकों एवं वडीलों (ज्येष्ठ)की शिविर जिसका विषय ''पंचकल्याणक महोत्सव'' रहेगा। जिसमें पंचकल्याणक सम्बन्धी विविध विषयोंकी माहिती एवं प्रत्येक विधिकी महत्त्वता विद्वानों द्वारा समझाई जायेगी। इस शिविरकी सभी माहिती **Songadh Bal Shibir** एप डाउनलोड करनेसे मिल जायेगी और अपना रजिस्ट्रेशन भी कर सकेंगे जिससे आपकी ठहरने एवं भोजनकी व्यवस्था उचित हो सके। ता. २९-१२-२०२३के दिन श्री शत्रुंजय तीर्थक्षेत्रकी यात्राका आयोजन भी किया गया है।

इस शिविरके मुख्य सौजन्यका लाभ (१) मुमुक्षु ऑफ ग्रान्ड रेपीडस, **USA** (२) राजुल शाह, फ्लोरिडा-**USA** एवं सह सौजन्यकर्ताका लाभ (१) एक मुमुक्षु (२) भरतभाई कामदार, चेन्नाई, (३) जयंतीलाल शाह, लंडनको प्राप्त हुआ है।

इस शिविरमें आनेसे बालकोंको धार्मिक संस्कारके सिंचनके साथ पूज्य गुरुदेवश्री तथा पूज्य बहिनश्रीकी साधनाभूमि सुवर्णपुरीके जिनायतनोंमें स्थित जिनेन्द्र भगवंतोंके दर्शन-पूजन-भक्तिका, पूज्य गुरुदेवश्रीके कल्याणकारी सीडी प्रवचनोंका भी लाभ प्राप्त होगा। यह शिविर बालकों एवं वडीलों (ज्येष्ठ व्यक्तिओं)के लिये रखी गई है।

लि. कहान पुष्प परिवारकी ओरसे

श्री हसमुखभाई वोरा–प्रमुखके जय जिनन्द्र

# (१२३)

# प्रौढ व्यक्तिके लिए प्रश्नोत्तर

(नीचे दिये गये प्रश्नोंके उत्तर जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला भाग-1-2के प्रकरण-4मेंसे मिलेंगे)

(1) स्वयंके आत्माकी शक्तिकी वृद्धि करे वह ..... अंग सम्यग्दृष्टिको होता है।

(2) अनंतानुबंधी क्रोधादि कषायके उदयका अभाव वह ..... है।

(3) अतत्त्वमें तत्त्वपनेका श्रद्धान जिसे न हो वह ..... गुण सम्यग्दृष्टिको होता है।

(4) धर्ममें और धर्मके फलमें परम उत्साह वर्ते वह ..... है।

(5) सर्व प्राणीयोंमें उपकारकी बुद्धि और मैत्रीभाव वह ..... है।

(6) सम्यग्दृष्टि कर्मके फलकी इच्छा नहीं करता ऐसा ..... अंग उसे होता है।

(7) चौदह गुणस्थानमेंसे तेरहवें गुणस्थानवाला ..... केवली और चौदहवें गुणस्थानवाला ..... केवली कहा जाता है।

(8) धर्मका उद्योत-प्रकाश करना वह ..... अंग सम्यक्दृष्टिको होता है।

(9) जो ज्ञान सहित तप करे वह ..... है।

(10) सम्यक्त्वके आठ दोष ..... उदयसे ही होते हैं।

(11) जो धर्मसे विमुख हो जाय उसे स्थिर करना वह ..... अंग सम्यक्दृष्टिको होता है।

(12) समवसरणके 100 इन्द्रोंमेंसे भवनवासी देवोंके ..... इन्द्र होते हैं।

(13) सम्यक्दृष्टिको संदेह और शंका न हो ऐसा ..... गुण होता है।

(14) श्रावककी ग्यारह प्रतिमामें आठवीं प्रतिमा ..... होती है।

(15) चौदह गुणस्थानमें छठवें गुणस्थानको ..... और सातवें गुणस्थानको ..... कहते हैं।

(16) मधुमक्खी ..... इन्द्रियवाला जीव है।

(17) मुनिसुव्रत भगवानके वैराग्यका कारण ..... ज्ञान था।

(18) मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि भाव दुःखरूप होने पर भी उसे हितरूप मानकर उसका सेवन करना वह ..... तत्त्वकी भूल है।

(19) जंबूद्वीपकी 34 कर्मभूमिमें विदेहक्षेत्रकी ..... भूमि होती है।

(20) चौदह गुणस्थानमें ग्यारहवें गुणस्थानको ..... गुणस्थान कहते हैं।

# (१२३)

## छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

नीचे दिये गये वाक्योंके आधारसे २४ तीर्थंकरोंके नाम बताओ।

(१) व्यक्ति संसारमें इच्छा रखता है। .....

(२) परिक्षामें उत्तीर्ण होनेके बाद दिया जाता है। .....

(३) जिसका अंत न हो वह .....

(४) जिनके पाँचों कल्याणक एक ही स्थान पर हुए हो और
जिस जगहका नाम एक फूल परसे हो वह .....

(५) जिन्होंने आहारदानकी परम्परा प्रारंभ की .....

(६) सूर्यके उदित होते ही खिल उठे वह .....

(७) एक प्रसिद्ध कापड़ मिलका नाम .....

(८) सबसे कम समयमें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई .....

(९) गर्मीमें जिसकी आवश्यकता होती है .....

(१०) जिसको जीता न जा सके वह .....

(११) बुद्धिमानमें जो श्रेष्ठ हो वह .....

(१२) जिनके स्पर्शसे लोहा भी सुवर्ण बन जाय .....

(१३) महिनेमें जो धीरे धीरे घटता है और धीरे धीरे बढता है .....

(१४) प्रत्येक प्राणीको प्रत्येक स्थितिमें जो कार्य हमेशा करते रहना चाहिये .....

(१५) फूलोंके पंक्तिको कहते हैं .....

(१६) जो कोई भी कार्य करनेमें असमर्थ न हो वह .....

(१७) युद्धमें श्रेष्ठ योद्धाको कहते हैं .....

(१८) तीन पदके धारक अंतिम तीर्थंकर .....

(१९) एक नारायण जिनके चचेरे भाई थे .....

(२०) जिनके शासनकालमें मर्यादा पुरुषोत्तम रामका मोक्ष हुआ .....

(२१) जिनके चिह्नसे मंगल धार्मिक कार्यका प्रारंभ किया जाता है .....

(२२) जिन्होंने असी, मसी, कृषि विद्याका ज्ञान बताया .....

(२३) छठवें चक्रवर्तीके चार कल्याणक हस्तिनापुरमें हुए .....

(२४) चौबीसमेंसे जो तीर्थंकर बाकी रहे हो वे .....

## प्रौढ़के लिये दिये गये
## अक्टूबर-२०२३के प्रश्नोंके उत्तर

(1) पुद्गल द्रव्यमें
(2) प्रागभाव
(3) प्रध्वंसाभाव
(4) अत्यंत
(5) अत्यंत
(6) अन्योन्याभाव
(7) अभाव
(8) छहों
(9) अत्यंताभाव
(10) अन्योन्याभाव
(11) प्रागभाव
(12) अन्योन्याभाव
(13) प्रागभाव – प्रध्वंसाभाव
(14) अन्योन्याभाव
(15) (1) प्रागभाव
(2) प्रध्वंसाभाव
(3) अन्योन्याभाव
(4) अत्यंताभाव
(16) अत्यंत
(17) अत्यंताभाव
(1) प्रागभाव
(2) प्रध्वंसाभाव
(3) अन्योन्याभाव
(18) अत्यंताभाव
(19) अत्यंताभाव
(20) अत्यंताभाव

## बालकोंके लिये दिये गये
## अक्टूबर - २०२३ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) जिनसारखी
(२) सर्वज्ञदेव
(३) अनेकांत
(४) ज्ञान-राग
(५) ज्ञान स्वरूप
(६) वीतराग विज्ञान
(७) ज्ञायक
(८) रत्नत्रय
(९) सिद्ध
(१०) आत्मा
(११) सिद्धपद
(१२) आत्म
(१३) १८
(१४) मोक्ष
(१५) मिथ्यात्व
(१६) निर्जरा
(१७) समान
(१८) सम्यक्दर्शन,
सम्यक्ज्ञान
सम्यक्चारित्र
(१९) दर्शन-ज्ञान-चारित्र
(२०) आकुलता

# पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• है जीव! जिसमें तेरी रूचि होगी उसी अनुसार गति होगी। क्योंकि जब भविष्यमें भी तुझे अनन्तकाल रहना ही है तो यह देह छूटने पर कहाँ रहैगा? - कि जैसी तेरी रूचि होगी-जैसी तेरी मति होगी; वैसी ही गति पाएगा। जो तेरी मति चैतन्यस्वरूपमें न होकर राग और परमें होगी तो तुझे मरकर संसारमें ही भटकना पड़ेगा। अतः है जीव! 'अपनी मति,' राग व परमें न लगा।५९४।

• साधुका भावलिंग तो आनन्दका उग्रवेदन होता है। नग्नता व पंच महाव्रत तो द्रव्यलिंग है।५९५।

• भाई! तुझे पता ही नहीं, तेरी वस्तु तो अंतरमें अभेद ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव सामान्य एकरूप चली आ रही है। चाहे जितनी पर्यायें आए, परन्तु वस्तु तो सामान्य एकरूप ही चली आती है। ऐसे एकरूपकी दृष्टि करने पर, उसमें रहे हुए गुणोंके भेदका भी लक्ष्य छूट जाता है तथा भेद व गुण-विशेषताका लक्ष्य छूटने और अभेद पर दृष्टि पड़ने पर तुझे आनन्दका आस्वादन होगा; तभी तुझे धर्म होगा।५९६।

• दिगम्बर मुनिराज अर्थात् पंचपरमेष्ठीमें समाहित भगवन्तस्वरूप! अहा हा! कुन्दकुन्दाचार्य भगवानने कहा है कि 'अर्हन्त भगवानसे लेकर हमारे गुरु पर्यन्त विज्ञानधनमें ही निमग्न थे... रागमें न थे, निमित्तमें न थे, भेदमें भी न थे - वे सभी विज्ञानधनमें ही निमग्न थे'।५९७।

• शुद्ध द्रव्य तो उसे कहते हैं कि जो स्वयंकी निर्मलपर्यायका भी स्पर्श नहीं करता -चूमता नहीं - छूता नहीं। यहाँ कहते हैं कि द्रव्य, पर्यायको स्पर्श ही नहीं करता। यदि पर्यायका लक्ष्य करे तो तुझे राग होगा, और रागसे लाभ मानेगा तो मिथ्यात्व होगा।५९८।

• भाई! यह कोई वाद-विवादका विषय नहीं है; यह तो अन्तरका विषय है। अभी तो व्रत-तप कर उससे धर्म मानने-वाले तो स्थूल मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी हैं। पर्यायका लक्ष्य करोगे तो राग व दुःख होगा। निर्मल-पर्यायका भी लक्ष्य व आश्रय करोगे तो विकल्प उठेंगे। भगवान त्रिकाली-वस्तु तो पर्यायको छूती ही नहीं। जब पर्याय स्पर्श ही नही करती तो फिर तुझे पर्यायका लक्ष्य करनसे क्या प्रयोजन? अन्तरमें परिपूर्ण भगवान आत्मा है, उसका स्पर्श कर न! स्पर्श करने वाली पर्याय भी द्रव्यमें नहीं है। जैनदर्शन-वीतरागमार्ग बहुत ही सूक्ष्म है। दिगम्बर-दर्शनमें ही यह बात है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है।५९९।

आत्मधर्म
नवम्बर-२०२३
अंक-३ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-11-2023
Posted on 5-11-2023

Registered Regn. No. BVR-368/2021-2023
Renewed upto 31-12-2023
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

**Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.**

**Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.**

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
**SONGADH**-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org